दो शब्द

जैन धर्म में तपस्या का अत्यन्त महत्त्व पूर्ण स्थान है "इच्छा निरोधस्तपः" तपस्या से इच्छाओं का निरोध होता है जि ससे अनादि कालीन आहार संज्ञा का आकर्षण कम होता है और आहार के प्रति जीवकी आशक्ति कम होने से आत्मा अणाहा आत्म स्वरूप की ओर बढ़ती है, जो कि आत्मा का सहज शु स्वभाव है। उस मूल आत्म स्वरूप की प्राप्ति के लिऐ व अना काल से लगी आत्मा के साथ जो कार्मण वर्गणा है उसके क्षय लिए तप की अनिवार्य आवश्यकता है। शास्त्रों में कर्म क्षय कर के लिए प्रधान निमित्त तप को ही बताया है। निर्जरा के बार भेद में भी बाह्य व अभ्यन्तर तप ही है। कर्म काष्ट को जला के लिए तप को प्रत्यक्ष अग्नि कहा है। ऐसे तप पद की आर धना करने के लिए अनेक प्रकार की विधियां है। जिनमें वीसस्थ नक तप विधि का भी महत्त्व पूर्ण स्थान है। उस तप के आराध कों की सुविधा के लिऐ ही इस पुस्तक का प्रकाशन हो रहा जिसके संस्करण निकलते रहते है। इस विधि के माध्यम से त भावना विकसित हो यही शुभकामना

प्रवर्तिनी श्री विचक्षण श्री म०

मोती डुँगरी दादावाड़ी

जयपुर (राज०) ता० २५-९-७९

बीस स्थानक तप को इस पुस्तक के दान दाताओं के नाम

१०००) श्री जवाहर लाल जी [illegible] की पुण्य स्मृति में [illegible]

५००) दादावाड़ी वासक्षेप ज्ञान माला [illegible] जयपुर

५००) श्री हस्तिमल जी मेहता की धर्म० के पंचमी तप के उपलक्ष में-जयपुर

२००) श्री दुलीचंद जी टांक की धर्मपत्नि शांताबाई जयपुर

२००) श्री चांदबाई-माता जी उगमराज जी मेहता जोधपुर वाले

२००) श्री सोभागमल जी मेहता श्री कोटा

२००) श्री भागवती बाई बोहरा श्री ब्यावर

१००) श्री घन्नाबाई श्री आगरा वाले

१००) श्री केसरी चंद जी गोलेच्छा की धर्म० शांताबाई श्री जयपुर

१००) श्री सिताबचन्द जी झाड़चूर धर्म० प्रेमबाई श्री हैदराबाद

१००) श्री संतोषचन्द जी झाड़चूर धर्म० सुगनबाई श्री जयपुर

२००) श्री भाणपुरा श्री संघ श्री भानपुरा

१००) श्री० सौ० मनोहरदेवी डागा श्री भोपाल

२०१) श्री ज्ञान पंचमी उद्यापन तप के उपलक्ष में सदावतीबाई कुशल चन्द जी धाड़ीवाल की धर्म पत्नि

१०१) भंवर सिंह जी टोडावाले की मां एव पत्नि चंपाबाई जयपुर

५१) श्री भंवरीबाई बडोला श्री जयपुर

१०१) श्री उमरावमलजी ज्ञानचंद जी गोलेच्छा श्री जयपुर

श्री तीर्थंङ्कर पद प्राप्ति

यानि बीस स्थानक तपविधि
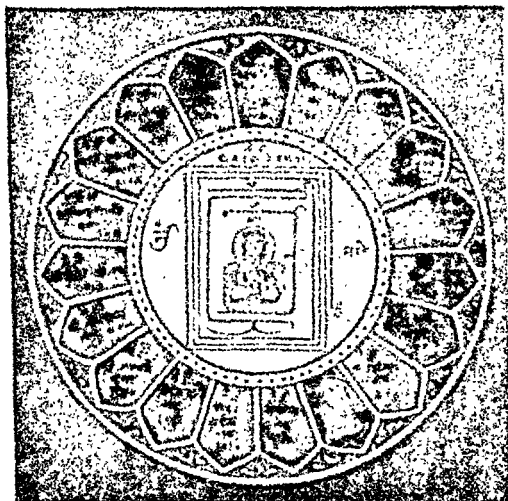
श्री बीस स्थानक पट

प्रस्तावना

श्री तीर्थंकर भगवानों ने पूर्व भव में जिन बीस पदों की आराधना करके जिस प्रकार तीर्थंकर नाम गोत्र का उपार्जन किया उस भावना को जन मानस तक पहुँचाने के ध्येय से व उसकी आराधना कर जन मानस को सन्मार्ग पर लाकर उसकी आत्मा का कल्याण करने के ध्येय से यह पुस्तक प्रस्तुत की जाती है। इस पुस्तक को छपाने का श्रेय तो साध्वीजी श्री १०८ श्रीधर्म श्री जी महाराज साहब को है। उन्होंने श्री दीपचंद जी गोलछा को प्रेरित किया पूज्यपाद यतिवर्य श्री १०८ उपाध्याय जी श्री पालीराम जी महाराज के प्रशिष्य श्री माणक मुनि जी द्वारा संग्रहित व यतिवर्य श्री १०८ श्री सूर्यमलजी द्वारा संशोधित पुस्तक " तीर्थंकर पद प्राप्ति विधि " पुस्तक को कुछ संशोधन कर व खरतरगच्छाधीश पूज्य आचार्य महाराज साहेब श्री १००८ श्री हरिसागर सूरीश्वर जी महाराज साहेब कृत चैत्यवंदन स्तवन स्तुति आदि नए बढ़ाकर इस पुस्तक को तैयार किया गया।

अभी एक फर्मा छपा था वो परम पूज्य विदुषी शासन प्रभाविका भारत कोकिला प्रवर्तनी जी श्री विचक्षण श्री जी महाराज साहब को अवलोकनार्थ भेजा वहाँ से पूज्य श्री का तुरंत समाचार आया कि १५०० प्रति हमारी और बढ़ा दें। दूसरे फर्मे से संख्या बढ़ाकर ४२०० प्रति की छपाई शुरु करादी गई। तथा आपश्री की प्रेरणा से कुछ पुस्तकों में श्री बीस स्थानक के बीसों पदों की २० कथाएं जो कि बहुत ही सुन्दर, रोचक, व

धर्म भावना से भरी है और [illegible] । [illegible]
होगा और रह गई । और [illegible]
सिर्फ क्रियाओं की ओर [illegible] ।

इस पुस्तक को सर्व प्रकार से शुद्ध व सुशोभित छपाने का पूरा प्रयत्न किया गया है फिर भी मुद्रण दोष या भाषा दोष या मति दोष दृष्टि दोष के कारण से रह गया हो तो क्षमाप्रार्थना है । पुस्तक सर्व साधारण आराम से पढ़ सके इसलिए बड़े अक्षरों में छपाई गई है । यदि जन साधारण इस बीस स्थानक तप की आराधना शुद्ध मन से करेगा तो वह जरूर तीर्थंकर नाम कर्म बांधेगा ।

सरदारमल पाबुदान गोलछा — **मिलापचंद गोलछा**
नवामाधुपुरा अहमदाबाद — दिनांक २९-१-७९

अनुक्रमणिका

दूसरा पद ऐसे वीसो पदकी वीस ओली करे। और पदारोधन प्रबल शक्तिवन्त अट्ठमतप करके आराधे, वीस अट्ठमें एक ओली होय ऐसे वीस ओली (४००) अट्ठमें आराधे। और उससे हीनशक्ति छट्ठ तप करके आराधे, उससे हीनशक्ति चोविहार उपवासकरके आराधे, ऐसेही तिविहार उपवास, आंबिल, एकासणा करके आराधे। औरशक्तिवान सर्व तपस्या के दिन अठपहरी पोसह करे, हीनशक्ति दिन पोसह करे, वीसोंपद पोसह सहित आराधे जो पोसह शक्ति सर्वपद में न हो तो आचार्य उपाध्याय, स्थविर, साधु, चारित्र, गौतम, तीर्थ यह सात स्थानके तो पोसह करके ही आराधे, तथा शक्ति न हो तो उस दिन देसावगासिक करे, सावद्य व्यापार तजे सोभीन हो तो यथा-शक्ति तपकर आराधे अपनी हीनता तथा सूतक जातकका सूतकमें उपवासादि तप नगिने स्त्रियां भी ऋतु समय का तप न गिने तथा

तपके दिन पोसह सहित करे तो बहुत श्रेयकारी है, सो न कर सके तो तपके दिन उभयटंक पडिक्कमणा करे तीन टंक देव वन्दन करे २००० एक पद का गुणना करे, ब्रह्मचर्यपाले, भूमि शयन करे, तपके दिन अति सावद्य व्यापार न करे असत्य न बोले सर्वदिन तप पद गुण कीर्तन में रहे, तप के दिन पोसह करे तो पारनेके दिन जिन भक्ति करके पारना करे, तपके दिन पोसह न हो तो उस दिन जिन भक्ति करे, करावे, भावना भावे तप के दिन पद के गुण भेद प्रमाण संख्या काउसग्ग करे (तावन्मात्र) तद्‌गुण स्मरणपूर्वक खमासमना देकर वन्दना करे, उस पद का गुण याद करके उदात स्वरे स्तवना करे। हर्षित रहे रात्रि को सोने के समय इरियावही पड़िक्कम के चैत्यवन्दन करके राइ संथारा गाथा गिनकर सोवे, निद्रा न आवे तब तक पद का गुण स्मरण करे।

भव्य जीवों को पोसह लेकर डेढ़ प्रहर सोना चाहिए ज्यादा नहीं.

प्रथम पद

वीस पदमें प्रथम 'ॐ णमो अरिहन्ताणं' पद है, इस पदकी २० माला जप करके श्रीअरिहन्त के बारह गुणोंका स्मरण कर नमस्कार करे।

॥ दोहा ॥

परम पंच-परमेष्टिमां, परमेश्वर भगवान।
चार निक्षेपे ध्याइये, नमो नमो जिन भान॥

१ अशोकवृक्ष प्रातिहार्य शोभिताय श्री-मदर्हते नमः

२ पञ्चवर्ण जानुदघ्न पुष्प प्रकर प्रातिहार्य शोभिताय श्री.

३ अति मधुर द्रव्य माधुर्यतोऽपि मधुरतम दिव्यध्वनि प्रातिहार्य शोभिताय श्री.

४ हेम रत्नजटित दण्डस्थितात्युज्वल चमर युगल वीजित व्यञ्जन क्रिया युक्त सत्प्राति.

५ [illegible]

सिंहासन प्रातिहार्य शोभिताय श्री.

६ [illegible] तेजोयुक्त भामण्डल प्रातिहार्य शोभिताय श्री.

७ दुन्दुभि प्रमुखानेक आकाशस्थित वादित्र वादनरूप प्रातिहार्य शोभिताय श्री.

८ मुक्ताजाल शुम्भत युक्त छत्रत्रय प्रातिहार्य श्री.

९ स्वपरापाय निवारकातिशय धराय श्री

१० पञ्चत्रिंशद् गुणयुक्त सुरासुर देवेन्द्र नरेन्द्राणां पूज्याय श्री

११ सर्व भाषानुगामि सकल संशयाच्छेदक वचनातिशयाय श्री

१२ लोकालोक प्रकाश केवलज्ञानरूप ज्ञानातिशयेश्वराय श्री

इस प्रकार बाहर वन्दना करनेके बाद, अरुहन्त, अरहन्त, देवाधिदेव, परमेश्वर, परम

करुणा निधान, महागोप, महामाहण, महानि-
र्यामक, महा सार्थवाह, जगद्वैद्य, जिनेश्वरं,
तीर्थङ्कर, विश्वम्भर, विश्वपते, विश्वोत्तम, त्रिका
लवित, सर्वज्ञ, सर्वदर्शिन, देवाधिदेव, पुरु-
षोत्तम, वीतराग, जगन्नाथ, जगद्वन्धो, जगत्त्रा
ण, शुद्ध भगवत विश्वालन्दिन्, सहजानन्दी,
शुद्धचेतना, धर्ममयी व्यक्तस्वभावमयी, धर्म
रत्न रत्नागार, धर्मदेशक, आव धर्मदाता, पर-
मात्मन्, परमदर्शी, परमगुरो, परमोपकारिन्,
परमसंसारतारक, अशरणशरण, तरणतारण,
भवभयहरण, इत्यादि भगवत् सहस्र नामका
पाठ करें और अगणित गुण गणोसे भूषित
श्रीमदर्हत जीवको प्रतिक्षणमें वन्दना दो और
हमारा त्राण, शरण, गति, मति, सब अरिहन्त
भगवान है, और श्री अरिहन्त भगवान हमारी
श्रद्धा सफल करे, इत्यादि से भगवानकी
स्तुति करे और उसीदिन चौवीस लोगस्स
का काउस्सग करे और दिनरात श्वेतव

अरिहन्तका गुण कीर्तन करे और पारणेके दिन अष्टप्रकारी, सत्रहप्रकारी, एकवीसप्रकारी अष्टोत्तरी आदि पूजा भक्ति यथाशक्ति करे, और नूतन मुकुट कुण्डल प्रभृति भूषण चढ़ावे, छत्र, चमर रत्नतिलक चढ़ावे, शरीर मार्जनके लिए वस्त्र तथा चन्दुवा चढ़ावे, समवशरणकी रचना कराकर तीसरे शालामें सिंहासन पर प्रभुको विराजमान कराके आगे मंत्र पूत धान्यसे रचना करे और इन्द्रध्वज चढ़ावे रूप्यमयी, अक्षतमयी अष्ट मांगलिक चढ़ावे सुन्दर वर्ण गंधयुक्त पुष्प फलादि रखे, और विविध प्रकार का पक्वान्न चढ़ावे भण्डारमें यथा शक्ति द्रव्य दे [illegible] कल्याणकका स्मरण करे और जिन बिम्ब भरावे. इस प्रकार से पारण पर्यंत अरिहन्त पदके आराधनासे मोक्ष सिद्धि होती है, अरिहन्त पदके आराधनासे देवपालादिक सुखी हुए ।

॥ इति प्रथम पदाराधन विधि ॥

॥ अथ द्वितीय पदाराधन विधि ॥

'ॐ णमो सिद्धाणं' यह दूसरा पद है इस पदकी बीस माला जप करके पूर्ववत् सिद्धके गुणोंकी स्मरण पूर्वक वन्दना करें ॥

॥ दोहा ॥

गुण अनंत निर्मल थया, सहज स्वरूप उजास।
अष्ट कर्म मल दाय करी, भये सिद्ध नमो तास ॥

१ समचतुरस्रादि षट् संस्थान रहिताय श्री सिद्धायनमः
२ वर्णादि पञ्च रहिताय श्री
३ सुरभ्यसुरभिगन्ध रहिताय श्री
४ रसादि पञ्च रसरहिताय श्री
५ स्पर्शाद्यष्ट रहिताय श्री
६ त्रिकवेद रहिताय श्री

इस प्रकार सिद्धके ३१ गुणोंके स्मरण के बाद ३१ लोगस्स का काउस्सग करे क्योंकि सिद्धके पन्द्रह गुण कहे है तथा आगे लिखे प्रकार से वन्दना करे जैसे

१ मतिज्ञानावर्णि कर्म रहिताय श्रीसिद्धाय नमः

२ श्रुतज्ञानावर्णि कर्म रहिताय नमः

३ अवधिज्ञानावर्णि कर्म रहिताय नमः

४ मनःपर्ययज्ञानावर्णि कर्म रहिताय नमः

५ केवलज्ञानावर्णि कर्म रहिताय नमः

६ नैनदर्शनावर्णि कर्म रहिताय नमः

७ [illegible]नैनदर्शनावर्णि कर्म रहिताय नमः

८ [illegible] कर्म रहिताय नमः

९ [illegible] कर्म रहिताय नमः

१० [illegible] कर्म रहिताय नमः

१९ नरकायुः कर्म रहिताय नमः
२० तिर्यगायुः कर्म रहिताय नमः
२१ मनुष्यायुः कर्म रहिताय नमः
२२ देवायुः कर्म रहिताय नमः
२३ शुभनाम कर्म रहिताय नमः
२४ अशुभनाम कर्म रहिताय नमः
२५ उच्चैर्गोत्र कर्म रहिताय नमः
२६ नीचैर्गोत्र कर्म रहिताय नमः
२७ दानान्तराय कर्म रहिताय नमः
२८ लाभान्तराय कर्म रहिताय नमः
२९ भोगान्तराय कर्म रहिताय नमः
३० उपभोगान्तराय कर्म रहिताय नमः
३१ वीर्यान्तराय कर्म रहिताय नमः

इस प्रकार वन्दना कर बाद में श्री सिद्ध भगवान की स्तुति करे जैसे अनन्त ज्ञानमयी, अनन्त दर्शनमयी, अनन्त चारित्रमयी, अनन्त

नार, आबू, अष्टापद, सम्मेतशिखर, चम्पापुरी, पावापुरी, कोटिशीलाकी स्थापना करके अष्ट-प्रकारी प्रभूकी पूजा यथाशक्ति भक्तिपूर्वक करे पञ्चवर्ण धान्यसें त्रिलोक नालिकाकी पट्ट रचना करे तथा घृतके मेरु पर्वत की रचना करे और सिद्ध कल्याणका उत्सव करके सिद्धपद आराधन करे द्रव्य याचकोंको दे सिद्ध पदके आराधनसे हस्तिपाल राजाको ज्ञान हुआ था।

॥ इति द्वितीय पदाराधन विधि ॥

॥ अथ तृतीय पदाराधन विधि॥

"ॐ णमो पवयणस्स" यह तृतीयपद है इस पदकी वीस माला जप करके प्रवचन पदके गुणोंका स्मरण पूर्वक वन्दना करें

॥ दोहा ॥

भावामय औषधि सम, प्रवचन अमृत वृष्टि ।
त्रिभुवन जीवन सुखकरी, जय जय प्रवचन दृष्टि॥

१ सर्वतः प्राणातिपात विरताय नमः
२ सर्वतो मृषावाद विरताय नमः
३ सर्वतोऽदत्तादान विरताय नमः
४ सर्वतो मैथुन विरताय नमः
५ सर्वतः परिग्रह विरताय नमः
६ देशतः प्राणातिपात विरताय नमः
७ देशतो मृषावाद विरताय नमः
८ देशतोऽदत्तादान विरताय नमः
९ देशतो मैथुन विरताय नमः
१० देशतः परिग्रह विरताय नमः
११ दिशि परिमाणव्रत युक्ताय नमः
१२ भोगोपभोग परिमाणव्रत युक्ताय नमः
१३ अनर्थदण्ड विरताय नमः
१४ सामायिकव्रत युक्ताय नमः
१५ देशावगासिव्रत युक्ताय नमः
१६ पोसहो पवासीव्रत युक्ताय नमः

१७ अतिथिसंविभाग व्रत युक्ताय नम
१८ विधि सूत्रागमाय नमः
१९ वर्णक सूत्रागमाय नमः
२० भय सूत्रागमाय नमः
२१ उत्सर्ग सूत्रागमाय नमः
२२ अपवाद सूत्रागमाय नमः
२३ उभय सूत्रागमाय नमः
२४ उद्यम सूत्रागमाय नमः
२५ सर्वनय समूहात्मक श्री प्रवचनाय नमः
२६ सप्तभङ्गी रचनात्मकाय नमः
२७ द्वादशाङ्ग गुणी पिट्टिकाय नमः

इन पदोंकी उच्चारण पूर्वक वन्दना करें फिर २७ लोगस्सका काउस्सग करे पश्चात् प्रवचनकी स्तुति करे जैसे जिसको श्री जिनेश्वर परमेश्वर की स्थापना की है, और जो चतुर्विध संघ तथा श्रीमुखसे भाषित हुआ जो स्याद्वाद मुद्रांकित श्री सिद्धान्त कहा,

तदनुकूल श्रद्धा प्रवर्तन करे, जो श्री संघ प्रवचन कहा जाता है वह कैसा है, जैसे रत्नोंकी खानि, रोहणाचलके समान गुणों की खानि श्री प्रवचन है, जैसे तारों का स्थान आकाश में है उसके समान गुणो का श्री प्रवचन हैं, जैसे कल्पवृक्ष सदा स्वर्ग में रहता है वैसे ही सर्व गुण सर्वदा श्री प्रवचन में रहते हैं, कमलोंका आकर सरके समान श्री प्रवचन गुणों का आकर है जैसे जलका अविनाशी कोष समुद्र है वैसे गुणोंका भंडार श्री प्रवचन है, तेजपुञ्ज जैसे सूर्य है वैसे गुणपुञ्ज श्री प्रवचन है, सकल बीजोत्पत्तिका अवन्ध्य हेतु पुष्करावर्त के समान सम्यग्गुण बीजोत्पत्तिका हेतु श्रीप्रवचन संघभक्ति है, जैसे अमृतपानसे सर्व विष नष्ट होता है, प्रवचनामृतपानसे परम मिथ्यात्वका नाश होता है. ऐसा श्री प्रवचन अपार संसाररूपी समुद्रको

उत्तर करि साश्वत् विश्वास मुक्ति पदमें विराजता है ऐसे श्री प्रवचनजीको हमारी प्रदक्षिणा वन्दना रहो और भव २ में श्री प्रवचनमें हमारी भक्ति बनी रहे. इस प्रकार स्तुति करके श्री सिद्धान्तका विधिपूर्वक कपूरादि सुगन्ध वास धूपादिसे पूजन करे और यथाशक्ति पुस्तकका उपकरण करावे. प्रभावना करे. साधु साध्वी प्रमुखको औषध, अन्न, वस्त्र, प्रभृति, द्रव्य यथायोग्य देवे और दिनरात प्रवचन के गुण गान करे इसप्रकार तृतीयपद के आराधनसे सर्वेष्ट सिद्धि होती है, प्रवचन पदके आराधनसे भरतादिको केवल ज्ञान हुआ ॥

॥ इति तृतीय पदाराधन विधि ॥

॥ अथ चतुर्थ पदाराधन विधि ॥

"ॐ णमो आयरियाणं." यह चतुर्थ पद है. इस पदकी वीस मोंला जप करके भावाचार्य के ३६ गुणोका स्मरण पूर्वक वन्दना करे.

॥ दोहा ॥

छत्तीस छत्तीसी गुण, [illegible] ।
जिनमत [illegible] नमो नमो [illegible]

१ प्रतिरूप गुणधराय श्री आचार्याय नमः
२ तेजस्वी गुणधराय श्री आचार्याय नमः
३ युगप्रधानागमाय श्री आचार्याय नमः
४ मधुरवाक्यगुणधराय श्री आचार्याय नमः
५ गम्भीर गुणधराय श्री आचार्याय नमः
६ सुबुद्धि गुणधराय श्री आचार्याय नमः
७ उपदेश तत्पराय श्री आचार्याय नमः
८ अपरिश्रावि गुणधराय श्री आचार्याय नमः
९ चन्द्रवत्सौम्यत्वगुणधराय श्रीआचार्याय नमः
१० विविधाभिग्रहमतिधराय श्रीआचार्याय नमः
११ अविकथक गुणधराय श्री आचार्यायनम.
१२ अचपल गुणधराय श्री आचार्याय नम
१३ संयम शीलगुणराय श्री आचार्याय नम
१४ प्रशान्तहृदयाय श्रीमदाचार्याय नमः

१५ क्षमागुणाय श्रीमदाचार्याय नमः
१६ मार्दवगुणाय श्रीमदाचार्याय नमः
१७ आर्जवगुणाय श्री ”
१८ निर्लोभतागुणाय श्री ”
१९ तपोगुणयुक्ताय श्री ”
२० सयमगुण युक्ताय श्री ”
२१ सत्यधर्म युक्ताय श्री ”
२२ शौचगुण युक्ताय श्री ”
२३ अकिञ्चन गुणयुक्ताय श्री ”
२४ ब्रह्मचर्य गुणयुक्ताय श्री ”
२५ अनित्य भावना भाविताय श्री ”
२६ अशरण भावना भाविताय श्री ”
२७ संसार भावना भाविताय श्री ”
२८ एकत्व भावना भाविताय श्री ”
२९ अन्यत्व भावना भाविताय श्री ”
३० अशुचि भावना भाविताय श्री ”
३१ आश्रव भावना भविताय श्री ”

३२ [illegible]

३३ [illegible]

३४ लोकस्वभाव भावना भावितात्मा श्री

३५ बोधदुर्लभ भावना भावितात्मा श्री

३६ दुर्लभ धर्मदायक भावना भावितात्मा श्री

इस प्रकार गुण स्मरण पूर्वक वन्दना करके आचार्यकी स्तुति करे जैसे श्री आचार्य, गच्छेशा सकल मुनि श्रेष्ठ, गुणज्ञानी ज्येष्ठ, शासन, श्री प्रवचन, प्रकाशक प्रवचनाधार, मार्गनचक्षुभूता आलम्बन भूत, मेढी भूत, सारण, वारण, चोयणा, पडिचोयणा कुशल, तीर्थंकरोपम, बहुश्रुत क्रिया-धार, धर्माधार, स्वपर समयज्ञ, परहृदयाकूतज्ञ, द्रव्य क्षेत्र भाव कालज्ञ, कुन्तियावण समान सूरि-मन्त्रधारी, गणधर गणी, गच्छस्तम्भपद धारी निर्दम्भ, श्रेष्ठ सुगुरु गणि, पिटकधारी, शासनो-न्नतिकारी, शासनोद्योतकारी, अर्थधर, सूत्रधर, सद्दानुयोगधर, शुद्धानुयोधर, ज्ञानभोगी, अनु

[illegible]

[illegible]

॥ इति चतुर्थ पदाराधन विधि ॥

॥ अथ पञ्चम पदाराधन विधि ॥

'ॐ णमो थेराणम्" इस पञ्चमपदको पूर्वोक्त
साधारण सब विधि स्थिर चित्तसे करे इस पद
बीसमाला गिने फिर गुरुके समीप द्वादशाव
पूर्वक वन्दना करके पच्चक्खान करे पञ्चम पद
उपदेश सुने ॥ यथा ॥ स्थविरेषु त्रिभेषु, लौ
लोकोत्तरेषु च । यो भक्तिं कुरुते भावात् भ
द्वय सुखावहा ॥ १ ॥ लौकिके पितरादीनां न
स्कारं करोतियः ॥ तीर्थयात्रा फलं तस्य सर्वदा
सुखावहम् ॥ २ ॥ लोकोत्तराश्रये, वृद्धा महा
विभूषिताः निःसगवृत्तयस्त्रिधा, पर्यायादि
भेदतः ॥ ३ ॥ पर्यायेण विंशताब्दा वयसा

४ कुल स्थविर देवताय [illegible]

गणनमः

५ लौकिक [illegible] स्थविर देवताय

६ लौकिक गुरु स्थविर देवताय

७ श्री लोकोत्तर श्री संघ स्थविराय नमः

८ लोकोत्तर पर्याय स्थविराय नमः

९. लोकोत्तर श्रुत स्थविराय नमः

१० लोकोत्तर वय स्थविराय नमः

इस प्रकारसे वन्दना करनेके बाद स्थवि
पदकी स्तुति करे जैसे जगतमें स्थविर दो
प्रकारके होते हैं एक लौकिक, दूसरे लोकोत्तर
उसमें देशवृद्ध, नगर वृद्ध, ग्रामवृद्ध, कुलवृद्ध
माता, पिता, प्रमुख लौकिक स्थविर हैं उन्होंके
विनय प्रतिपत्ति इस लोकमें यशवृद्ध का कार
है परलोकमें भी पुण्यका हेतु है जिससे ती
करादिक भी माता पिता प्रभृतिके विनयसे न

चूंकि इससे लौकिक स्थविरको भी व्यवहारमें नमस्कारादि करना योग्य है दूसरा लोकोत्तर स्थविर. धर्मगुरु तथा श्री संघ है. जो तीन प्रकारका है १ पर्याय स्थविर. २ वयः स्थविर. ३. श्रुत स्थविर. जिसको दीक्षा लिए २० वर्ष हो गया हो उसको पर्याय स्थविर कहते हैं। जिसकी उमर साठ ६० वर्ष से अधिक हो उसको वयः स्थविर कहते हैं ॥ और जो समवायङ्ग से ऊपर तक आगम पढ़ा हो उसको श्रुत स्थविर कहते हैं॥ ये तीनों प्रकारके स्थविर शासनकी शोभा. गणका भूषण, समस्त आचार विचारमें सूर्य के समान प्रकाशक है. जिस कारणसे उपाध्याय प्रवर्तक गणावच्छेदक रत्नाधिकको प्रवर्तन कराता है। जो मार्गसे शिथिल होते साधुओंको शिक्षा देकर स्थिर करता है. उत्साह को बढ़ाता है. क्रियादिकमें पुष्ट करता है. जो पद प्राप्त नहीं है उसको प्राप्त करता है और

मारने श्रीगौतमको श्रुत स्थविर समझकर बहु मान प्रतिपत्ति करके और प्रश्नगोष्ठी करके पञ्चविधि धर्म्म अङ्गीकार कराया इस लिये मोक्षार्थीभी परमोपकारी स्थविर मुनिराज है उस स्थविरोंको नित्यप्रति त्रिकाल वन्दना हो वह स्थविर हमारे मुक्ति साधनके सहा- यक होवे, इस प्रकारसे स्थविरकी स्तुति करके १० लोगस्स का काउस्सग करे। चन्दन तैला- दिका विलेपन करे और इस पदमें भी यथा शक्ति दिन रात पौषध करे और इस पदकी भक्तिके विषयमें स्थविर साधुओंको आहार पानी वस्त्र पात्र कम्बल औषध प्रभृतिसे बहुत विनय कर हाथ जोड़ कर वन्दना करे सुख- शाता पूछे साधर्मियोंकी भक्ति करे, माता पिता आदि गुरुजनोंकी यथायोग विनय भक्ति करे, स्थविरपदाराधनसे पद्मोत्तर राजाने तीर्थंकरपद पाया ॥

॥ इति पञ्चम पदाराधन विधि ॥

॥ अथ पञ्चमदोपाध्याय विधि ॥

"ॐ णमो उवज्झायाणम" यह ऊठा पद है स्थिर चित्त से सर्व मोथाग्य विधि करके इस पद की २० माला जप करे पीछे खमासणा दे वंदना करे।

॥ दोहा ॥

बोध सूक्ष्म विणु जीव ने, न होय तत्व प्रतीत।
भणे भणावे सुत्र ने, जय जय पाठक गीत॥

१ आचाराङ्गश्रुत पाठकायनमः
२ श्रीसुयगडाङ्गश्रुत पाठकायनमः
३ श्रीसमवायाङ्गश्रुत पाठकायनमः
४ श्रीठाणङ्गश्रुत पाठकायनमः
५ श्रीभगवतीश्रुत पाठकायनमः
६ श्री ज्ञाता धमकथा श्रुत पाठकायनमः
७ श्री उपासकदसाश्रुत पाठकायनमः
८ श्री अन्तगडदशाश्रुत पाठकायनमः

९ श्री अनुत्तरोववाईश्रुत पाठकायनमः
१० श्रीप्रश्नव्याकरणश्रुत पाठकायनमः
११ श्री विपाकश्रुत पाठकायनमः
१२ श्री उवाइउपाङ्गश्रुत पाठकायनमः
१३ श्री रायपसेणी उपाङ्गश्रुत पाठकायनमः
१४ श्री जीवाभिगमउपाङ्गश्रुत पाठकायनमः
१५ श्री पन्नवणा उपाङ्गश्रुत पाठकायनमः
१६ श्रीजम्बूद्वीपन्नत्तिउपाङ्गश्रुत पाठकायनमः
१७ श्री चन्दपन्नत्तिउपाङ्गश्रुत पाठकायनमः
१८ श्री सूरपन्नत्तिउपाङ्गश्रुत पाठकायनमः
१९ श्री निरयावलोउपाङ्गश्रुत पाठकायनमः
२० श्री कप्पिका उपाङ्गश्रुत पाठकायनमः
२१ श्री पुप्फचूलिया उपाङ्गश्रुत पाठकायनमः
२२ श्री पुप्फिकाउपाङ्गश्रुत पाठकायनमः
२३ श्री वह्निदशाउपांगश्रुत पाठकायनमः
२४ श्री द्वादशांगीश्रुत पाठकायनमः
२५ श्री द्वादशांगीश्रुतार्थव्यापकाय नमः

इत्यादि से वन्दना करके श्री लोगस्स का काउस्सग करे पीछे उपाध्याय पदकी स्तुति करे जैसे श्री उपाध्यायप्रभुजी, ज्ञान दर्शन चारित्रका निधान, श्रीआचार्यजीकी धर्मराजधानीका प्रधान, सकल नयनिक्षेपाप्रमाणगर्भित द्वादशांगी जाननेवाले, सुविहितगच्छप्रवृत्तिके मण्डन, समस्त परमपदके साधक, मुनि वृन्दका सूत्रधार, सर्वजनोंसे अधिक बुद्धिमान, दुर्बोध शिष्यको सुबोध करनेमें कुशल, जाड्य ग्रन्थि को चूर्णकरनेमें वज्र मूशलके समान अवारित भव्य प्रतिबोधनमें सावधान, अविच्छिन्न वस्तु स्वरूपके उपयोग में दत्तावधान, सुतरां देशकाल क्षेत्रभावादि विशेषका जानकार, सुगुप्त परहृदयज्ञात, आचार्यसे सूत्रार्थ दानाधिकार रूप विशेषाधिकार प्राप्त, और अगणित गुणगणका आधार अशेष भविकजनोंके संशयोंको हरनार, भवको धर्म मार्गमें स्थिर करनार, परमपात्र, इस

प्रकार के श्री उपाध्याय जी, वाचक, पाठक, अध्यापक, सिद्धसाधक, श्रुतवृद्ध, कृतकर्माशिक्षक परिश्रम, वृतमाल साम्यधारी विदित पदार्थ विभाग अप्रमादी सदा निर्विवादी आत्मप्रवादी अद्धयानन्दी इत्यादि नामोसे सुशोभित जगद्बन्धु जगद्भ्राता, जगदुपकारी श्री उपाध्यायजीको प्रतिक्षण हमारी वन्दना हो इत्यादि प्रकारसे हर्षित चित्तसे स्तुति करे इस पदके आराधनमें भी यथाशक्ति पौषध करे श्रद्धा भक्तिसे उपाध्यायजीका विनय करे वस्त्र पात्र कम्बल औषध प्रभृतिदान करे, मुनिराजजीको चन्दनादि विलेपन करे, उपाध्यायजीका नवाँग पूजन करे और जिसके पास धर्मशास्त्र पढ़ा हो उसकी यथोचित भक्ति करे, उपकार का स्मरण करे, सिद्धान्त लिखावे, ज्ञान भण्डार करावे इसप्रकार उपाध्यायपदका आराधन करनेसे सर्वेष्टका लाभ होता है पठम् उपाध्याय

विधि महाव्रतधारी, पञ्चप्रमाद दूरकारी, वि-
विधकाय प्रतिपालक, अन्तरंग शत्रुओंका ना-
शक, सप्तविध नय देशनाका दाता, सप्त
महाभयसे त्राता, अष्टविध अष्टांग योगका
साधक, जात्यादि अष्टमद स्थानका जेता,
नवविध ब्रह्मगुप्तिका धारक, दशादि नवनि-
दान परिहारी, दशविध यतिधर्मधारी, जिसने
दश दोषोंको शोधन किया है वह, अगणित
गुणगणालंकृतगात्र, सप्तविंशति गुणयुक्त, ऐसे
महात्मा, महानन्द, शिवार्थी, सन्यासी भिक्षु
निग्रन्थी, मधुकर वृत्ति, आत्मोपासक मुक्तमान
महर्षिशान्त, दान्त, अवधूत, शुद्धदेशी शुद्धलेश्
अकामी पूर्ण ब्रह्मचारी जागरिकतीर्थी पूर्णका
अध्यात्मवेदी जिनज्येष्ठ सुत उर्द्धरेता अनुभव
नायक त्रियोगी महाशय भद्रक तत्त्वज्ञान
वाचंयम मोहजयी ऋषि अलुब्ध अकिञ्च
मत मदन प्रतिकर्मी श्रमण समभय पण्डि

वैयाच्च करे, तपस्वी साधुका अङ्ग विलेपन करे उपाश्रय बनावे २ वृद्धरोगी साधुओंको औषध प्रभृति देवे दीक्षामहोत्सव करे और अठारह शीलांगरथ गाथाकी साधुवन्दना पढ़े इत्यादि सप्तम पदके आराधनसे प्राणी अभिमत फलोंको प्राप्त होता है ॥ साधुपदके आराधनसे वीरभद्र तीर्थंकर हुए ॥

॥ इति सप्तम पदाराधन विधि ॥

॥अथ अष्टम पदाराधन विधि ॥

"ॐ णमो नाणस्स" इस अष्टम पदकी [illegible] माला जाप करके ज्ञानपदके गुणोंकी [illegible] प्रदक्षिणा देना नीचे का दोहा [illegible] खमासमणापूर्वक वन्दना करे :—

॥ दोहा ॥

[illegible] ज्ञान [illegible] निवटे भव भय भीति
[illegible] नमो नमो ज्ञान ना रीति।

१७ स्पर्शनेन्द्रियापाय मति०

१८ रसनेन्द्रियापाय मति०

१९ घ्राणेन्द्रियापाय मति०

२० चक्षुरिन्द्रियपाय मति०

२१ श्रोत्रेन्द्रियापाय मति०

२२ मनैनापाय मति०

२३ स्पर्शनेन्द्रियधारणा. मति०

२४ रसनेन्द्रियधारणा, मति०

२५ घ्राणेन्द्रियधारणा, मति०

२६ चक्षुरिन्द्रियधारणा. मति०

२७ श्रोत्रेन्द्रियधारणा, मति०

२८ मनोधारणा. मति०

२९ अक्षरश्रुतज्ञानाय नमः

३० अनक्षर श्रुत ज्ञानाय नमः

३१ संज्ञिश्रुत ज्ञानाय नमः

३२ असंज्ञिश्रुत ज्ञानाय नमः

३३ सम्यक् श्रुत ज्ञानाय नमः

३४ मिथ्याश्रुत ज्ञानायनमः
३५ सादिश्रुत ज्ञानाय नमः
३६ अनादिश्रुत ज्ञानाय नमः
३७ सपर्य्य वसतिश्रुत ज्ञानाय नमः
३८ अपर्य वसतिश्रुत ज्ञानाय नमः
३९ गमिकश्रुत ज्ञानाय नमः
४० अगमिकश्रुत ज्ञानाय नमः
४१ अंग प्रविष्टश्रुत ज्ञानाय नमः
४२ अनग प्रविष्टश्रुत ज्ञानाय नमः
४३ अणुगामि अवधि ज्ञानायः नमः
४४ अनणुगामि अवधि ज्ञानाय नमः
४५ वर्द्धमान अवधि ज्ञानाय नमः
४६ हीयमान अवधि ज्ञानाय नमः
४७ प्रतिपाति अवधि ज्ञानाय नमः
४८ अप्रतिपाति अवधि ज्ञानाय नमः
४९ ऋजुमति अवधि ज्ञानाय नमः
५० विपुलमति अवधि ज्ञानाय नमः

५१ लोकालोक प्रकाशकाय श्री केवल ज्ञानाय नमः

इत्यादि प्रकारसे नमस्कार करके ५१ लोगस्सका काउस्सग करे पीछे ज्ञान गुणकी स्तुति करे जैसे जगत्में ज्ञानके विना अनादि कालकी भूल नहीं मिटती । भूल अज्ञान है क्योंकि राग द्वेपसे भरे भुवनपति प्रभृति देवोंको ही साधारणजन मुक्ति दायक मानते हैं किन्तु विचारनेकी बात है कि जो स्वयं मुक्ति नहीं पाता वह दूसरेको कैसे मुक्ति दे सकेगा इसलिए जो मुक्तिको प्राप्त है जिनमें काम क्रोध लोभ राग द्वेष मोहअज्ञान न हो वही आराधनीय देव है भुवनपति प्रभृति देवोंमे ये सब दोप भरे हैं इसलिए इनको मुक्ति कहांसे हो सकती है । देव वह है जो अठारह दोपको नाश करे अठारह गुणको प्रगट करे और अनन्त गुणोंका आकर राग

द्वेष अज्ञानसे रहित यथार्थ वादी चौसठ इन्द्रों का पूज्य हो वह देवाधिदेव अरिहन्त परमात्मा मुक्तिदायक देव है ऐसी भूल बिना सम्यग् ज्ञानके नहीं मिट सकती वह तो देवत्वकी भूल हुई अब गुरुकी भूल दिखाते हैं। जो सकल जीवोंको हित ग्रहण करावे शुद्ध मार्ग दिखलावे शुद्ध प्रवृत्ति का आदर करावे निरारम्भवृत्तिसे रहे लकड़ीकी नौकाके समान स्वयं तिरे दूसरों को तारे सो गुरु कहाने योग्य है न की हृष्ट पुष्ट मस्त विषय कषायसे अठारह पाप स्थानकका सेवन करनेवाला पापस्थानकका उपदेश करनेवाला पौद्गलिक स्वार्थकी वात बनानेवाला लोहेकी नावके समान स्वयं डूबते हुए दूसरोंकोभी भवसमुद्रमें डुबाने वाला हो ऐसोंको गुरु मानना भूल है सो यह भुल सम्यग् ज्ञान विना नहीं मिट सकती धर्मकी भी भूल है क्योंकि दुर्गतिमें पड़ते प्राणीको धारक बहु

कामिक जीवोंका [illegible] [illegible] [illegible]
वस्तु स्वभावका [illegible] [illegible] [illegible]
है नकि भगवान गंगास्नान, [illegible] [illegible]
पशु वध (हिंसा) कन्दमूल [illegible] अनन्त-
काय भक्षण संसार नरकका [illegible] शादी
(कन्यादान) यज्ञ इत्यादि अशुद्ध क्रिया धर्म है
इसको धर्म मानना बड़ी भूल है यह भूल
सम्यग् ज्ञानके विना नहीं मिटती ॥ तथा करणीय
अकरणीयकी भूल है जिससे अज्ञानी प्राणी
आगमोक्त निर्जराके कारण जन्म मरण मिटानेके
समय को करणीय कहते हैं और जो संसार
वृद्धिका पुष्ट हेतु आश्रय है उसको अकरणीय
कहते हैं यह भूल भी सम्यग् ज्ञानके विना नहीं
मिट सकती तथा गुणकी भूल है जो आत्मिक
भावकानिवारण कारक और शेष आवरणी
कर्मके निर्जराका कारण हो वह गुण है
किन्तु अज्ञानी मनुष्य कर्मका मुख्य हेतु

शस्त्र चलाना वगैरह भूतादि दमन रसग्रन्थका पठन विविध मन्त्रादिका चमत्कार दिखाना, विविध प्रकार के अवसरो चित संसारानुबन्धि वचन रचना करना, हाथी, घोड़ा व्याघ्र प्रमुख का दमन करना विविध औषधसे रोगादिका दमन करना, अनेक प्रकारसे राजाको प्रसन्न करना अनेक प्रकारका वेष बनाना; अदृश्य पदार्थको देखना इत्यादि कलावालोंको भी गुणी कहते हैं वह बड़ी भूल है वह सम्यग् ज्ञानके बिना नहीं मिटती ॥ जो अपनेकों कुमार्गसे छुड़ावे शुद्ध मार्ग दिखावे संवरका आदर करावे, वस्तु का स्वरूप बतावे, ऐसे मुनिराज अथवा शुद्ध श्रद्धावान् साधर्मी धर्मरुची धर्मिष्ठ, धर्मोपदेशक उसकोही हितकारक कहते हैं लेकिन अज्ञानी लोग जो मिथ्यात्वाआश्रमका सेवन करावे, संसार वृद्धिका कारण मिलावे, धर्मका कारण पचक्खान प्रभृतिमें अन्तराय करे, अपने स्वार्थ

के लिए रोवे हँसे उन्हीं के हित कहते हैं यह भूल विना सम्यग् ज्ञान की नहीं मिटती॥ तथा जगतमें निपुण दक्ष स्थान वह है जो अनादि कालका विरोधि जन्म मरणादिके छेदनकी सामग्री पाकर आश्रवको त्याग करे, यथाशक्ति विरति का आदर करे, अनर्थ दण्ड में न मिले, शुभाःशुभ उदय व्यापक न होवे लेकिन अज्ञ मिथ्यात्वी लोभजो वन्धका हेतु व्यापारादि अठारह पाप सेवन करे शत्रुका दमन करे गृहका निर्वाह करे, अनेक आर्त रौद्रका कारण भूत उत्साह करे, किसीको झूठे फन्देमें लगावे उसको वड़ा सयाना अकलमन्द कहते हैं वह भूल विना सम्यग् ज्ञानके मिटती नहीं॥ इसलिये जीव अनन्त गुणोंमें विशे गुण ज्ञान आवरणके कारणको त्याग करे निगोदादि सूक्ष्म भाव को पढ़े सुने, पूर्वका पढ़ा हुआ स्मरण करे भक्ष्य अभक्ष्य पेय अपेयका

जीवा जीवादि नवतत्वका, लोकस्वरूपका, जड़ चेतनका, जन्ममरणका स्वर्ग, मृत्यु, पाताल का इस लोक परलोकका बन्ध निर्जरा का साध्य साधनका शुद्धाशुद्ध कारणका षड् द्रव्यके उत्पादक व्ययादिका कार्य कारणका परस्पर विलेपन चतुर्गति भ्रमणका मुक्ति प्राप्तिका चिदानन्द स्वरूपका रूपी अरूपी सुखःदुखका कारण सम्यग् ज्ञान ही है। उसके पांच भेद हैं उन पांचों में श्रुत ज्ञान मुख्य है, क्योंकि चार ज्ञान मूक और स्वोपकारी हैं और श्रुत ज्ञान ही स्वपरोपकारी है अतः श्री जिनभाषित द्वादशाङ्गी स्याद्वाद शैलीमय जो आगम है उसको निरन्तर हमारी वन्दना हो आगमोक्त करणी हमारी श्रद्धा सदा निश्चित रहे इसके सेवनसे हमारा जन्म सफल हो इत्यादि प्रकार से ज्ञानपदकी स्तुति करे इस पदके भक्ति विषे ज्ञानीकी सेवा विनय वैयावृत्ति करे ज्ञान तथा पुस्तकका पूजन

करे. ज्ञानका उपकरण मंगावे. पुस्त प्रमुख करावे. पढ़ने वालेको सहाय करे. अन्न. वस्त्र रहनेकी जगह प्रमुख देवे आगम श्रवण करे ज्ञान भण्डार करावे. ज्ञानकी सेवा भली भांति करे. आसातनाओंको हटावे, मिथ्या नहीं बोले. केवलज्ञान कल्याणक का उत्सव. समवसरणकी रचना करावे. बड़ा उत्सव करे इस प्रकार अष्टमपदके आराधनसे ज्ञान वृद्धि अभिमत सिद्धि होती है ॥ ज्ञानपदाराधनसे जयन्त राजा तीर्थंकर हुए ॥

॥ इति अष्टम पदाराधन विधि ॥

॥ अथ नवमपदाराधन विधि ॥

"ॐ नमो दंसणस्स" ॥ यह नवम पद है इस पदकी २० माला जप करे पीछे दर्शन पदके गुणोंको स्मरण करके प्रदक्षिणा देते हुवे नीचेके दोहा बोलते हुवे खमासणापूर्वक वन्दना करे ।

॥ दोहा ॥

लोकालोक ना भाव जे, केवली भाषित जेह।
सत्य करी अवधार तो नमो नमो दर्शन तेह ॥

१ जीव जीवादि तत्वार्थ श्रद्धान रूप सम्यग् दर्शन गुणाय नमः
२ सुविहित मुनि बहुमानादर रूप सम्यग् श्रद्धान रूप.
३ कुलिङ्गी पासत्थादी असत्य वन सम्यग् श्रद्धान रूप.
४ अन्य तीर्थी सङ्ग वर्जन सम्यग् श्रद्धान रूप
५ श्री जिनागम सुश्रुषालिङ्ग सम्यग् दर्शन गुणाय नमः
६ बुभुक्षित द्विजाहारेच्छा न्याय धर्मेच्छालिङ्ग सम्यग्
७ देवगुरु वैयावृत्ति करणाद्यमन लिङ्ग सम्यग्
८ श्री अर्हद् भक्ति प्रमादि विनय करण सम्यग्

९ श्री सिद्धविनयकरण सम्यग्
१० श्री जिन प्रतिमा विनय करण सम्यग्
११ श्री सिद्धान्त भक्ति प्रेमादि करण सम्यग्
१२ क्षान्त्यादि धर्मभक्तिप्रेमादि विनय करण सम्यग्
१३ श्री साधु भक्ति बहुमानादि विनय करण सम्यग्
१४ श्री आचार्य भक्तिप्रेमादि विनय०
१५ श्री उपाध्याय भक्तिप्रेमादि विनय०
१६ श्री प्रवचन भक्ति प्रेमादि०
१७ श्री दर्शन भक्ति प्रेमादि०
१८ श्री जिन जिनागम रुचि एकान्त वादादि असत्य इत्यवधारण मनःशुद्धि सम्यग्
१९ श्री जिनभक्त्यायन्न सिध्यति तन्नान्यैः सिध्यतीति वचन शुद्धि०

२० जिनेश्वर भाषितमेव सत्यं नाह्यदिति निः शङ्कावधारण रूप.

२१ सन्देह छेदन भेदन व्यथा सहन जिन देव नमन रूप काम शुद्धि सम्यग्.

२२ स्वप्नेपि परदर्शनाभिलाष रूप निःशङ्क सम्यग्.

२३ धर्मज शुभ फले कष्ट भवत्ये वेत्यादि अवधारण रूप.

२४ अन्य दर्शन गत मान पूजादि चमत्कारं पश्यन्नपि अप्रशंऽकरण रूप.

२५ बहुतर कार्योपनयनेपि मिथ्यात्वि संगति वर्जन रूप

२६ वर्तमान समयार्थ ज्ञापक सम्यप्रभावक दर्शन गुणाय नमः

२७ अवितथ उपदेश भव्य जन रञ्जक

२८ शुभ स्याद्वाद तर्क युक्तिबलैः परमत खण्डन सम्यग्
२९ गणितानुयोग विशारद बलैः शुभ निमित्त भापक सम्यग्
३० इच्छारोध परिणति करी विविध दुष्कर तप करण रूप
३१ पूर्वगत विद्याबलैः श्री संघ पीड़ा निवारक रूप
३२ प्रबलकार्योत्पन्ने अञ्जन चूर्णादि योग बलैः शासनोन्नति करण रूप
३३ प्रबल धर्मकारणोपनये अतुल कवित्व शक्ति बलैः नव नव रस गर्भित काव्यैः भूपति मनोरञ्जन रूप
३४ गुरु वन्दन प्रत्याख्यानादि क्रिया कौशल रूप भूपणै स्तथा अत्यादरभावै विविध क्रिया करण रूप भूपणैश्च भूपित सम्यग
३५ अपार संसार समुद्रोत्तीरणो तीर्थरूप

निपुण गीतार्थ सेवनरूप भूषण भूषित सम्यग्

३६ श्री गुरुदेव संघादि भक्ति करणरूप भूषण भूषित सम्यग्

३७ नर देवादि भिरनेक प्रकारै श्चालितोपि स्थिरता रूप

३८ तीर्थ रथयात्रा संघावास्ति दान दीनोद्धारण परोपकरणादिभिः सकल जनानुमोद कारापण रूप प्रभावना भूषण

३९ सर्वाणि सुखादीनि औदयिक भावस्य कर्मणः फलमिति श्रद्धातो दुःखदायकेष्वपि अप्रतिकूल चिन्तनरूप सम्यगुपसम दर्शन०

४० सकल दुख कारण रूपात् पौद्गलिक भावात् विरतो भूत्वा शिवसुखेच्छालक्षण सम्यग् संवेग दर्शन गुणाय नमः

४१ अतुल पुण्यजं देवेन्द्रादि सुखं कारा-

गार मम मितिबोधन लक्षण सम्यक्
निर्वेद दर्शनगुणाय नमः
४२ पापोदयात् रोग शोकादिभिः पीडितानां
मिथ्यात्वोदयानाम् कुश्रद्धान कुमार्ग
गमनादिकं दृष्ट्वा तद्दुःख निवारण चिंता
लक्षण सम्यगनुकम्पा दर्शन०
४३ राग द्वेषा ज्ञानत्रयं परिहृत्य जिनेश्वरो
योऽभूत तस्य वाक्य मन्मथान भवतीति
दृढ़ रङ्ग लक्षण सम्यगास्तिक्य दर्शन०
४४ अन्यतीर्थीय चैत्यं मन्यतीर्थीयैर्गृहीतं
वा चैत्यं तस्य वन्दनाकरणरूप सम्यक्
यतना दर्शन०
४५ पर तीर्थीयंस्यतैर्गृहीतं वा चैत्यस्य
नमनाकरणरूप०
४६ परतीर्थीकैः सह प्रथमालायवर्जन रूप०
४७ परतीर्थकैः सह पुनः पुनः संलाप
वर्जन रूप०

४८ परतीर्थीकानां श्रद्धया अशनादि दाना-
करणरूप०

४९ पुनः पुनः पूर्वोक्त विधि पूर्वक संभापण
संलापाद्य करण रुप०

५० द्रव्य क्षेत्रकालादि विपन्नतया उपाया-
न्तरै रात्मत्राणा समर्थ श्चेतर्हि अप-
वाद सेवनां जिनाज्ञां ज्ञात्वा राज्ञः
अन्यस्यवा मिथ्यात्वि नो नगराधिपस्य
अनिवार्याज्ञा करणरुप आगार दर्शन०

५१ गणैर्निभरस्यं स्वधर्म प्रतिकूलकारित
करणरुपागार दर्शन०

५२ वलवता चौरादिभिर्वावनिगृह्यमाणः सन्
आत्मरक्षणं कृत्वा आत्मशुद्धये प्राय-
श्चित्तं करिष्यामीति कृत्वा अशुद्ध क्रिया
करण रूपागार दर्शन०

५३ मिथ्यादृष्टि धर्मद्वेषि क्षुद्रदेवता प्रभावा
दभिभूतः पूर्वोक्त प्रकारं स्मृत्वा अशुद्ध

अतः सर्व धर्मस्य द्वारं सम्यक्त्व मिति भावना भावित.

५८ यथा मूले पुष्टे प्रासादः पुष्टो भवति तथा सम्यक्त्व दृढे धर्मप्रसादो दृढो भव-तीति प्रवर्तन रूप भावना०

५९. सम्यक्त्वगुण रत्ननिधानं तेन विना आत्मनः सहजागुणाः स्थिरतां न भज-न्तीति भावना०

६० यथा कल्पवृक्षलता कामधेनु चिन्ता मण्याद्यनेकरत्नानामाधारः पृथिवी तथा सम्यक्त्वं सर्व गुणानामाधारः इति भावना०

६१ दधि दुग्ध घृतादि रसानां भाजन मिव श्रुत शील समसंवेग रूपाध्यात्म रस-भाजनं सम्यक्त्व मिति भावना०

६२ चेतना लक्षणो जीवपदार्थः सन् त्रैका-लिकः इति स्वरूपोपयोगरूप सम्यग्

स्थान दर्शन गुणाय नमः

६३ आत्मा द्रव्यास्तिकाय नयेन नित्योऽनु-
भव वासना युक्तोऽपल अखण्ड निज
गुण युक्तो आत्मागमोस्मीति उपयोग
रुप०

६४ सर्वे जीवाः कुम्भकारवत् कर्मकर्तार इति
श्रद्धारुप०

६५ आत्मा स्वकृत कर्मणां तस्य फलं स्वयं
भोक्ता निश्चये नास्तीति श्रद्धा रुप०

६६ मोक्षपदं अचलं मनन्त सुखनिवासं आधि
व्याधि रहित परम सुखमस्ति इति श्रद्धा
रुप०

६७ मोक्षपदं सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्रैरेव
लभ्यते नान्योपायैरिति श्रद्धा रुप०

इस प्रकार खमासणा देकर ६७ लोगस्स
का काउस्सग करे पीछे दर्शन पदकी स्तुति
हाथ जोड़कर करे जैसे जगतमें सर्व साधक

१३ कोटिकादि सुविहित गण भक्ति बहुमा
न रुप०

१४ कोटिकादि सुविहित गण भक्ति करण
निपुण रुप०

१५ सुविहित कोटिकादि गण संस्तुति करण
रुप०

१६ सुविहित गणानाशातना रुप०

१७ श्री संघ अनाशातना रुप०

१८ श्री संघ भक्तिकरण रुप०

१९ श्री संघ बहुमान करण रुप०

२० श्री संघ स्तुति करण रुप०

२१ श्री आगमोक्त क्रिया अनाशातना रुप०

२२ आगमोक्त शुद्ध क्रिया भक्ति करण रुप०

२३ आगमोक्त शुद्ध क्रिया बहुमान करण रुप०

२४ श्रद्धागमोक्त क्रिया स्तुतिकरण रुप०

२५ श्री जिनोक्त धर्म अनासातना रुप०

२६ श्री जिनोक्त धर्म भक्ति करण निपुणरुप०

का फल तप होता है और तपका फल निर्जरा. उसका फल क्रियानिवृत्ति. उसका फल अयोगित्व. अयोगीपनेका फल भव संतति क्षय. भवसंततिक्षयका फल मुक्ति है. इस लिए सब कल्याणका भाजन विनय है. जैसे वृक्षका मूल दृढ सरस होनेसे स्कन्ध. शाखा. प्रशाखा. दल. पुष्प. फल प्रमुख सब सुन्दर होता है: वैसेही विनय गुणवाला इच्छुक प्राणी श्रुतशीलके तत्त्वको प्राप्त होता है पाप का नाश करता है. और सिद्धिको प्राप्त होता है। जैसे सुवर्णमें नरमी बहुत है, नमानेसे नम जाता है। कालिमा रहित है, अग्निमें तपानेसे अधिक उज्वल होता है. इसीसे सातों धातुमें सुवर्ण अधिक श्रेष्ठ कहा जाता है, और पवित्र माना जाता है, वैसेही विनय सब गुणों में श्रेष्ठ है विनयगुणसंपन्न

का फल तप होता है और तपका फल निर्जरा. उसका फल क्रियानिवृत्ति. उसका फल अयोगित्व. अयोगीपनेका फल भव संतति क्षय. भवसंततिक्षयका फल मुक्ति है. इस लिए सब कल्याणका भाजन विनय है. जैसे वृक्षका मूल दृढ सरस होनेसे स्कन्ध. शाखा. प्रशाखा. दल, पुष्प, फल प्रमुख सब सुलभ होता है; वैसेही विनय गुणवाला इच्छुक प्राणी श्रुतशीलके तत्वको प्राप्त होता है पाप का नाश करता है. और सिद्धिको प्राप्त होता है। जैसे सुवर्णमें नरमी बहुत है, नमानेसे नम जाता है। कालिमा रहित है, अग्निमें तपानेसे अधिक उज्वल होता है, इसीसे सातों धातुमें सुवर्ण अधिक श्रेष्ठ कहा जाता है, और पवित्र माना जाता है, वैसेही विनय सब गुणों में श्रेष्ठ है विनयगुणसंपन्न

५ सर्वतः परिग्रह विरमणव्रत धराय नमः
६ सम्यग् क्षमा गुणधराय नमः
७ सम्यग् मार्दव गुण०
८ सम्यगार्ज्जव गुण०
९ सम्यग् मुक्ति गुण०
१० सम्यग् तपो गुण०
११ सम्यग् संयम गुण०
१२ सम्यग् बोधि दर्शन गुण०
१३ सम्यग् सत्य गुण०
१४ सम्यग् सौम्य गुण०
१५ सम्यग् अकिंचन गुण०
१६ सम्यग् ब्रह्मचर्य गुण०
१७ विगत प्राणातिपाताश्रवाय गुणवते नमः
१८ विगत मृषावादाश्रवाय गुणवते०
१९ विगत अदत्तादानाश्रवाय०
२० विगत मैथुनाश्रवाय०
२१ विगत परिग्रहाश्रवाय०

२२ श्रोत्रेन्द्रिय विषय विरक्ताय चारित्र गुणवते नमः
२३ घ्राणेन्द्रिय विषय विरक्ताय०
२४ चक्षुरिन्द्रिय विषय०
२५ रसनेन्द्रिय विषय०
२६ स्पर्शनेन्द्रिय विषय०
२७ विजित क्रोधाय चारित्र गुणवते नमः
२८ विजय मान दोषाय
२९ विजित माया दोषाय०
३० विजित लोभ दोषाय०
३१ मनोदण्ड रहिताय०
३२ वचनदण्ड रहिताय०
३३ कायादण्ड रहिताय०
३४ वसति शुद्ध ब्रह्मव्रतयुक्ताय०
३५ स्त्रीभिः सह वारता वर्जन ब्रह्मव्रत युक्ताय०
३६ स्त्री सेवितासन वर्जन ब्रह्मव्रत०

३७ स्त्री रूपावलोकन ब्रह्मव्रत०

३८ कुड्यन्तरित स्त्रीपुरुष संयुत वसति-
शयन वर्जन ब्रह्मव्रत०

३९ पूर्वक्रीडित क्रीडास्मरण वर्जन ब्रह्म०

४० अनिमन्त्रिताहारवर्जन ब्रह्म०

४१ सरसाहार वर्जन ब्रह्म०

४२ विभूषणादिना शरीरशोभा वर्जन ब्रह्म०

४३ आचार्य वैयावृत्तिकरण सम्यक् चारित्र
गुणायनमः

४४ उपाध्याय वैयावृत्तिकर

४५ तपस्वि वैयावृत्तिकरण

४६ शिष्य वैयावृत्तिकरण

४७ ग्लान वैयावृत्तिकरण

४८ साधु वैयावृत्तिकरण

४९ साध्वी वैयावृत्तिकरण

५० संघ वैयावृत्तिकरण

५१ कुल वैयावृत्तिकरण

५२ गण वैयावृत्तिकरण

५३ सम्यक् चारित्रज्ञान गुणायनमः

५४ सम्यक् चारित्र गुणाय नमः

५५ सम्यक् दर्शन चारित्र गुणाय०

५६ अनसन तप चारित्र०

५७ सम्यगूनोदर तप चारित्र०

५८ सम्यग्वृत्ति संक्षेप तपश्चारित्र०

५९ सम्यग् रसत्याग तपश्चारित्र०

६० सम्यक् कायक्लेश तप०

६१ सम्यक् संलीनता तप०

६२ प्रायश्चित्ताभ्यन्तर तप०

६३ विनयभयन्तर तप०

६४ वैयावृत्ति तप०

६५ सद्भाव तप०

६६ ध्यानतप चारित्रकायोत्सर्गतप चारित्र०

६७ क्रोधजय चारित्र गुणायनमः

६८ मानजय०

६९ मायाजय०

७० लोभजय०

इस प्रकार वन्दना करके ७० लोगस्सका काउस्सग करे. पीछे चारित्रपदकी स्तुति करे जैसे सच्चिदानन्दपदका मुख्य कारण अनंत चारित्र गुण है. चक्रवर्ति प्रमुख पदवी चारित्र का सहज फल है चारित्रके पालनेसे आमोसही विप्पोसही प्रमुख अनेक लब्धि उत्पन्न होती है चारित्र ज्ञानानन्द स्वरूप परम अनुभव स्वरूप है. वर्ष पर्यन्त शुद्ध चारित्री अनुत्तर देवताके सुखको अतिक्रमण करता है. चारित्रीको राज-भय चोरभय नही होता. चारित्री सर्वका हितकारी जगद्वन्द्य होता है, परलोकमें स्वर्ग अथवा मुक्तिको पाता है, चक्रवर्ति प्रभृति भी चारित्रके रहस्यको समझकर छ खंडके प्रभुताको तृणवत् परित्याग करके वडे उत्साहसे चारित्र अङ्गीकार करता, जिससे देवेन्द्र नरे-

करे. औरोंको भी चारित्र गुणका प्रेमी बनावे. चारित्र पदाराधनसे वरुणदेव जिनवर हुए ॥

॥ इति एकादश पदाराधन विधि ॥

॥ अथ द्वादश पदाराधन विधि ॥

"ॐ णमो बंभय धारीणाम्" इस बारहवें पदकी २० माला जप करे, पीछे ब्रह्मचर्यके गुण स्मरणपूर्वक प्रदक्षणा देते हुए नीचे का दोहा बोलते हुए वन्दना करे।

॥ दोहा ॥

जिन प्रतिमा जिन मंदिरा, कंचन ना करे जेह।
ब्रह्मव्रत थी बहुफल कहे, नमो नमो शीयल सुदेह॥

१ मनसा औदारिक विषय अकारणरूप ब्रह्मचर्य धरायनमः
२ मनसा औदारिक विषय अनुमोदनरूप
३ मनसा औदारिक विषय अननुमोदनरूप

४ वचसा औदारिक विषय अकरणरूप
५ वचसा औदारिक विषय अकारणरूप
६ वचसा औदारिक विषय अननुमोदनरूप
७ कायेन औदारिक विषय अकरणरूप
८ कायेन औदारिक विषय अकारणरूप
९ कायेन औदारिक विषय अननुमोदनरूप
१० मनसा वैक्रिय विषय अकारण रूप
११ मनसा वैक्रिय विषय अकारणरूप
१२ मनसा वैक्रिय विषय अननुमोदनरूप
१३ वचसा वैक्रिय विषय अकरणरूप
१४ वचसा वैक्रिय विषय अनुमोदनरूप
१५ वचसा वैक्रिय विषय अननुमोदन रूप
१६ कायेन वैक्रिय विषय अकरणरूप
१७ कायेन वैक्रिय विषय अकारण रूप
१८ कायेन वैक्रिय विषय अननुमोदनरूप
ब्रह्मचर्य गुणधराय नमः ॥

इस प्रकार वन्दना करके १८लोगस्स का काउ स्सग करे, पीछे ब्रह्मचर्यपदकी स्तुति करे। जैसे सब व्रतोंमे ब्रह्मचर्य बड़ा है—

ब्रह्मचर्य रक्षाकी नववाड़ प्ररुपण किया है, और वृतोंके भङ्गसे एकही वृत भङ्ग होता हैं, और ब्रह्मचर्यके भङ्गसे पाँचो वृत भङ्ग होते हैं, जिनसे चतुर्थवृत पालन किया उन्होंने पाँचों वृतपालन किये, समुद्रके समान ब्रह्मबृत हैं, और वृत छोटी२ नदियोंके समान है, यदि ब्रह्मचर्यमें दृढ़ होवे तो देवता, दानव, यक्ष, राक्षस प्रमुख सब कोई नमस्कार करे। देवता में सर्व शक्ति रहने पर भी ब्रह्मचर्य पालनको शक्ति नहीं हैं ब्रह्मचारी स्वयं उज्जवल रहता है ब्रह्मचारी यदी मन्त्र विद्या साधन करे तो शीघ्र सिद्धि होवे नारदके समान कलहकारी केवल ब्रह्मवृतसे ही तरता हैं। आगममें भी महाव्रत की ३२ बड़ी उपमा दी हैं;—

२ अधिकरणिका क्रिया प्रवर्तन रहिताय गुणवते नमः

३ परितापनिका क्रिया प्रवर्तन रहिताय०

४ प्राणान्तिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय०

५ आरम्भिका क्रिया प्रवर्तन रहिताय०

६ परिग्रह क्रिया प्रवर्तन रहिताय०

७ माया प्रत्ययिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय०

८ मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय०

९ अपच्चक्खाणी क्रिया प्रवर्तन रहिताय०

१० दृष्टिको क्रिया प्रवर्तन रहिताय०

११ स्पर्शन क्रिया प्रवर्तन रहिताय०

१२ प्रातित्यकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय०

१३ सामन्तोपनिपातनिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय०

१४ नैशस्त्रिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय०

१५ स्वहस्की क्रिया प्रवर्तन रहिताय०

॥ अथ चतुर्दश पदाराधन विधि ॥

"ॐ णमो तवस्स" इस चौदहवें पदकी २० माला जप करके तपके भेदोको स्मरण पूर्वक प्रदिक्षणा देते हुए नीचे का दोहा बोलते वन्दना करे ।

॥ दोहा ॥

कर्म खपावे चीकणा, भाव मंगल तप जाण।
पचास लब्धि उपजे, जय जय तप गुण खाण॥

१ अनसनाभिध तपोयुक्ताय नमः
२ उनोदरी तपोयुक्ताय नमः
३ वृत्तिसंक्षेप तपोयुक्ताय नमः
४ रसत्याग रूप तपोयुक्ताय नम
५ कायक्लेश तपोयुक्ताय नमः
६ संलीनता तपोयुक्ताय नमः
७ प्रायश्चित तपोयुक्ताय नमः
८ विनयरूप तपोयुक्ताय नमः

९ वैयावृत्तिरूप तपोयुक्ताय नमः
१० सज्झावकररूप तपोयुक्ताय नमः
११ ध्यानरूप तपोयुक्ताय नमः
१२ कायोत्सर्गरूप तपोयुक्ताय नमः

इत्यादि प्रकारसे वन्दना करके १२ लोगस्सका काउस्सग करे. पीछे तपपदकी स्तुति करे. जैसे, सम्यग् तप कठिन कर्म रूप जंजीर तोड़नेके लिये वज्रके समान, अति कठिन निकाचित् कर्म फलदेकर छूटता है, अथवा सम्यग् तपसे छूटता है, अनन्त बलवान् शासनाधीश सकल विज्ञान भास्कर सुरासुर सेवित चरणारविन्द निश्चय चरम शरीरी परमेश्वर ने भी कठिन तप करके कर्मको छेदन किया

तपसे विचित्र लब्धि, अष्टमहा सिद्धि प्राप्त होती हैं, चक्रवर्ती प्रमुख पदवी तपका फल है, तपस्वीका वचन निःसफल नहीं होता, चारित्री तपोधन कहे जाते हैं दृढ़ प्रहारी,

चिलाती पुत्र, काल कुमारादि १० महा पाप
कर्ता तपके बलसे थोड़े कालमें केवल ज्ञान
पाकर संसारसे तैर गए ईच्छानिरोध करके
क्षमायुक्त तप करे तो साधकको कोई पदवी
दुष्कर नहीं है। तपस्वी मुनिशासनों दीपक
समान है. सब दर्शनिक वन्दनीय होते है
तपस्वीसे मिथ्यात्वी भी डरते है। आसा
तना नहीं कर सकते शासनका उच्छेद करनेको
नमुचि नामका दुष्ट मिथ्यात्वी उद्धत था.
उसको विष्णुकुमारने शिक्षा देकर शासनकी
शोभा की। अष्टम तप प्रभावसे देवता भी
कहे सो कार्य करते है. नागकेतुकी अष्टम
तपके प्रभावसे धरणेन्द्र ने आकर स्वयं रक्षा की
तपस्वी मुनि शासनमें बडे महान् है, उन्हींसे
गच्छकी शाभा है, इस कारण मुक्तिका परम
अवन्ध्य कारण परम मङ्गलरूप तपपदको हमारी
सदा वन्दना हो॥ इस प्रकारसे तपपदकी

स्तुति करके उसी दिन अपना काय सहनरूप कायक्लेशादि तपका आदर करे पारणेमें आंबिल आदि तपका अभिग्रह धारण करे, तपके दिन क्लेश कषाय न करे. ओली पर्यन्त मन्द कषायसे वर्ते. कषायका त्याग ही भावतप है. इस क्षमासे सब धर्म क्रिया सफल होती है. बारह मोदकसे मुनिको प्रतिलाभ करावे. पीछे तपस्वी श्रावक आदिकी भक्ति करे, शीत–तापसे तपस्वीकी साहाय करे, यथा योग्य कनकावलीका, रत्नावली, मुक्तावल, सिंहक्रीडन प्रमुख तप करे. इस प्रकार तप पदका आराधन कर ने से कनककेतु तीर्थंकर हुए॥

॥ इति चतुर्दश पदाराधन विधि ॥

॥ अथ पञ्चदश पदाराधन विधि. ॥

"ॐ णमो गोयमस्स" ॥ इस पन्द्रहवें पदको २० माला जप करके पीछे श्री गौतम पदका गणधर भगवानके गुणोंका स्मरण करके प्रदिक्षणा देते हुवे नीचे का दोहा बोलते वन्दना करें ॥

॥ दोहा ॥

छठ्ठ छठ्ठ तप करे पारणों, चउनाणी गुण धाम।
ये सम शुभ पात्र को नहीं, नमो नमो गौतम स्वाम ॥

१ श्री गौतम गणधराय नमः
२ श्री अग्निभूति गणधराय नमः
३ श्री वायुभूति गणधराय नमः
४ श्री व्यक्तस्वामि गणधराय नमः
५ श्री सुधर्मा स्वामि गणधराय नमः
श्री मण्डितस्वामि गणधराय नमः

७ श्री मौर्यपुत्र स्वामि गणधराय नमः
८ श्री अकम्पितस्वामि गणधराय नमः
९ श्री अचल भ्राता गणधराय नमः
१० श्री मेतार्यस्वामि गणधराय नमः
११ श्री प्रभासस्वामि गणधराय नमः
१२ चतुर्विंशति तीर्थंकराणांद्विपञ्चाशदधिक चतुर्दशशत १४५२ गणधरेभ्यो नमः ॥

इत्यादि प्रकारसे वन्दना करनेके बाद १२ लोगस्स का काउस्सग करे. पीछे गौतम पदकी स्तुति करे ॥ स्वनिबद्ध गणधर नाम-कर्म विशेष प्राणी तीर्थंकरके प्रथम देशना में प्रभुके मुखसे उपदेश श्रवण करके परम वैराग्यसे उल्लसित चित्त होकर श्री जिनेश्वरजी के हाथसे दीक्षा ग्रहण की, और परमेश्वरको तीनवार प्रदक्षिणा करके खमासणा देकर कहा कि हे भगवन् हे इच्छाकारिन् वाचनाः प्रसाद दीजिए ऐसी परमेश्वरसे वाचना मांगकर

और उसी समय इन्द्र वज्रमणिके थालमें चन्दन आदि ५२ सुगन्धि द्रव्य चूर्ण भरकर निकट खड़े रहे तब परमेश्वर सिंहासनसे कुछ उठ कर थालेमेंसे चूर्ण उठाकर मुख्य गणधरके सिर पर डाला, उपन्नेवा उच्चारण करते हुए, और गणधरोंके सिरपरभी वासक्षेप डाला तब गणधरोंको लब्धि प्रगट हुई, सब गणधरों की दृष्टिमें जितने जीव पदार्थकी उत्पत्ति है वह सब देखनेमें आती है तब गणधर विचार करते है कि ये अनन्त उत्पाद कहां प्रवेश करेगा, तब फिर खमासणा पूर्वक प्रदक्षिणा करके वाचना मांगते है तो फिर प्रभुजी पूर्ववत् (विगमेवा) इस पदको उच्चारण करते हुए वासक्षेप डालते है, तब गणधरोंको विनाश प्राप्त होती हुई चीजें देखनेमें आती है, जो उत्पन्न होती है वो नष्ट होती है, इस प्रकार प्रति समय विनाश देखकर विचारते

है कि जब ऐसे अनन्त विनाश हो रहा है तो क्या होगा. फिर पूर्वोक्त प्रकारसे वाचना मांगते है, और प्रभुजी पूर्ववत् (धूएवा) ऐसा उच्चारण करके वासक्षेप गणधरोंके सिरपर डालते हैं तो गणधरों के दृष्टि में वे पदार्थ दिखते हैं और एक नवीन पर्याय उत्पन्न होती है और पूर्व पर्यायका नाश होता है, इस प्रकार वस्तुका उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यका ज्ञान रूप त्रिपदीको पाकर गणधर द्वादशांगीकी रचना करते है उसमें पांच अधिकार हैं जो सब सूत्र से रचना करते है. बारहवां अंग दृष्टि वाद है सो सम्पूर्ण गणधर लब्धिवन्तको होता है, चौदह पूर्व जिसका एक देश है ऐसे गणधर भगवान चार ज्ञान अनेक लब्धि सम्पन्न तीर्थंकरको उपमाको पाते है, शासन व्यवहारकी स्थापना श्री गणधर कृत होती है,

इससे चौवीस तीर्थंकरोंके १४५२ गणधरोंको हमारी नित्य त्रिकाल वन्दना हो॥ इस

री आदि फल रखे, इस तरहसे पन्द्रहवें
का आराधन कर हरिवाहन तीर्थंकर हुए।

॥ इति पञ्चदश पदाराधन विधि ॥

॥ अथ षोडश पदाराधन विधि ॥

"ॐ णमो जिणाणं" इस सोलहवें
की २० माला जप कर, प्रदिक्षणा देते हुवे
चे का दोहा बोलते हुवे २० वीहरमान जिन
ो वन्दना करे ।

॥ दोहा ॥

ाप अढारे क्षय थया, उपज्या गुण जस अंग।
यावच्च करिये मुदा, नमो नमो जिन पद संग॥

१ श्री सीमन्धर जिनेश्वरायनमः
२ श्री युगन्धर जिनेश्वरायनमः
३ श्री बाहु जिनेश्वरायनमः
४ श्री सुबाहु जिनेश्वरायनमः

५ श्री सुजात जिनेश्वरायनमः

६ श्री स्वयंप्रभ जिनेश्वरायनमः

७ श्री ऋषभानन जिनेश्वरायनमः

८ श्री अनन्तवीर्य जिनेश्वरायनमः

९ श्री सूरप्रभ जिनेश्वरायनमः

१० श्री विशाल जिनेश्वरायनमः

११ श्री वज्रधर जिनेश्वरायनमः

१२ श्री चन्द्रानन जिनेश्वरायनमः

१३ श्री चन्द्रबाहु जिनेश्वरायनमः

१४ श्री भुजंगस्वामि जिनेश्वरायनमः

१५ श्री ईश्वर जिनेश्वरायनमः

१६ श्री नेमिप्रभु जिनेश्वरायनमः

१७ श्री वीरसेन जिनेश्वरायनमः

१८ श्री महाभद्र जिनेश्वरायनमः

१९ श्री देवसेन जिनेश्वरायनमः

२० श्री अजित वीर्य जिनेश्वरायनमः

इस प्रकार वीस तीर्थंकरोंको वन्दना कर

२२ लोगस्सका काउस्सग करे पीछे मु

करे जैसे, तीर्थङ्कर, केवली, अवधिज्ञानी, मनः पर्यवज्ञानी, चतुर्दश पूर्व, दशपूर्व, उत्कृष्ट लब्धी वाले चारित्रीयोंको जिन कहते हैं, जिनकी वैयावृत्ति करे तथा उनके परिवार जैसे आचार्य, उपाध्याय, साधु, बाल, वृद्ध, ग्लान, तपस्वी, चैत्य, श्रमणसंघ ये सब जिनाज्ञाके आराधक हैं, बड़े गुणी हैं, इससे जिन पदमें इन्हींकी वैयावृत्ति करना हमारे मनुष्य भवका लाभ है, जो जिनको आराधन करे वो जिन होवे, वह धन्य है, कृत्य पुण्य है, जिन्होंने उक्त दश पदकी वैयावृत्ति की वही आराधक है, अल्प संसारी हैं श्री जिनजीके सेवन वैयावृत्ति का अजब तमाशा हैं जैसे अन्य हरिहरादि देव सातिशय भक्तिसे प्रसन्न होते हैं और आसातना बेअदबीसे अप्रसन्न होते हैं । वैसे श्री जिनदेव रीझते खीजते नहीं है, जैसे अन्यदेव अपराधीको जलाबला कर भस्म कर देते हैं

१४ कायगुप्ति रूप०
१५ मनोदण्ड विरताय चारित्रधराय नमः
१६ वचनदण्ड रहिताय०
१७ कायदण्ड विरताय०

इस प्रकार वन्दना करके १७ लोगस्स का काउस्सग करे पीछे चारित्र पदकी स्तुति करे जैसे–चारित्रधरसाधु पांच समिति तीन गुप्तिसे गुप्त स्वरूपमें रमता, इन्द्रियगण को दमन करता, सकल परभाव वमन करता, ध्यान ज्ञानसे कर्मबन्धनको जलाता, सर्व उपसर्ग परीषहोंको क्षमासे सहन करता, नवीन २ अभिग्रह रूप तपका अनुष्ठान करके चारित्र धर्मको निभाता हुआ सदा गुरुचरणमें नमता. कदापि समताको नहीं छोड़ता, यथावत शुद्ध आहार के लिये भ्रमण करता नव २ शास्त्र को पढ़ता, प्रतिक्षण शुद्धोपयोग रखता प्रतिक्षण तीर्थ श्रद्ध

३९ श्री निशीथच्छेद सू०
४० „ महानिशीथच्छेद सू०
४१ „ दशाश्रु तस्कन्धच्छेद सू०
४२ „ जीतकल्पच्छेद सू०
४३ „ पंचकल्पच्छेद सू०
४४ „ नन्दीचूलिका सू०
४५ „ अनुयोगद्वार चूलिका सू०
४६ „ स्यादस्तिरूपायस्याद्वाद सू०
४७ „ स्यादनास्तिभङ्ग प्ररूपकायस्या
४८ „ स्यादस्तिनास्तिभङ्ग प्ररूपकाय
द्वाद सू०
४९ „ स्याद् वक्तव्य भङ्गप्ररूपकाय
५० „ स्यादस्ति अवक्तव्य भङ्ग प्ररू
५१ „ स्यादनास्तिभंग प्ररूपकाय स्
५२ „ स्यादस्ति अव्यक्त भंग प्ररूप
इस प्रकारसे वन्दना करके ५२
का काउस्सग करें पीछे ज्ञानगुणकी

करे. जैसे—जगत्में ज्ञान उपकारी है, ज्ञान ही जगत्में निष्कारण बान्धव हितकारी सुखकारी है, ज्ञान मिथ्यात्व रूप अन्धकारको नाश करने को सूर्य है, संसार समुद्र तिरनेको जहाज है, ज्ञान मनुष्य भवका रत्न है, कुरूपका रूप ज्ञान है, ज्ञान परम देव है, ज्ञान अनन्त नेत्र हैं, ज्ञान देश विदेश सर्वत्र पूज्य है, ज्ञान से सब दुख छूटता है, छठ अट्ठम दशम प्रमुख उग्र तपस्याकारी अज्ञानीकी जो शुद्धता होती है उससे अनन्त गुण अधिक ज्ञानीकी शुद्धता होती हैं करोड़ों भवमें अज्ञानीको तपस्या करके जितनी निर्जरा नहीं होती उतनी ज्ञानी एक क्षणमें निर्जरा करता हैं पेय अपेय खाद्य अखाद्य कर्तव्य अकर्तव्य, सेव्य असेव्य, हित अहित, लोक, अलोक, स्व—पर, गुण अवगुण इहलोक परलोक, सत्य असत्य, द्रव्य,भाव कारण कार्य निश्चय व्यवहार, द्रव्य गुणपर्याय

ध्यान ध्येय ध्याता ज्ञान ज्ञेय त्राता दान देव
दाता सम्यग् असम्यग् स्वभाव परभाव ये सब
सम्यग् स्याद्वाद शैलीमय आगम ज्ञान विना
कोई तत्व नहीं पाता सर्व क्रिया का मूल
श्रद्धा और श्रद्धाका मूल ज्ञान है प्रथम ज्ञा
हो तो श्रद्धा होती है इस लिये ज्ञानीका
जीना सफल है, अज्ञानीका जीवन भव पूर्ण
है इससे जो सम्यग् ज्ञानका अभ्यास करे
वो धन्य हैं ॥ इसकारण सम्यग् ज्ञानीको हमारे
नित्य वन्दना हो हमारा सुखदाता ज्ञान
इत्यादि स्तुति करके पीछे पारणेमें सम्यक्
ज्ञानदाता गुरुको वन्दना अंग पूजा करे, ध
र्माचार्यका यथोचित् बहुमान करे, पुस्तक दें,
ज्ञानका उपकरण दें, नूतन पुस्तक छपावें ओली
पर्यन्त नूतनशास्त्र सुने, आगम सूत्रका अर्थ
सुने जिन भण्डारकी रक्षा करें, प्रतिक्षण आत्म

पदका है. उससे सब ज्योतिष शास्त्रस्वरुप पुरुष
को आश्रय करके चतुर्विध देवताका कल्याण
जो पुण्यफल दायक है उसका स्वरुप है । बारहवां
प्राणवायु पूर्व १३ कोटि पद प्रमाणका है
उसमें आयुर्वेदकी प्रक्रिया कही है और प्राणादि
१० वायुका स्वरूप प्राणायामादि योगका स्व
रूप कहा है । तेरहवां क्रिया विशाल नाम पूर्व
९ कोटि पद प्रमाणका है, उसमें छन्दशास्त्र
शब्दशास्त्र सर्व शिल्प सकलकला तात्विक
आत्मिक सब गुणोंका स्वरुप है । चौदहवां
त्रिलोकसार पूर्व १ कोटि ६० लाख पद प्रमाण
का है. उसमें काल स्वरूप अष्ट व्यवहार विधि
और गणितका परिकर्म विधि, निःशेष श्रुत स-
म्पदा इत्यादि स्वरूप हैं ॥ ये चौदह पूर्व हैं.
इनमें ४ अधिकार और भी दृष्टिवादमें हैं । इस
प्रकारका श्रुत सर्वांग स्याद्वादकी शैली चार
अनुयोग. [illegible] सप्त नय मानसो नयका उत्तर

भेद, दो मुख्य प्रमाण अनेक प्रमाणान्तर अनेक निक्षेप सप्तनय भंगी इत्यादि अनेक द्वार सहित एक एक पदकी व्याख्या है. जिसमें ऐसे श्रुतधारीकी तुलना कौन कर सकता है. श्री जैनागमरूप श्रुत जलधि गुणरत्नसे भरा है. वह आगमाज्ञा हमारा परम तत्व है. उसका श्रवण पठन हमारा साध्यका दाता है इसलिए श्रुतको हमारी त्रिकाल वन्दना हो इसप्रकार स्तुति करके श्रुताराधन निमित्त २० लोगस्स-का काउस्सग करें पारणेमें श्रुतधारीकी अंग पूजा करे वस्त्र आहारादि दे सेवा करे. नयी पुस्तकोंका भण्डार करे. पुस्तकोंकी कर्पूरसे पूजन करे. धूप दें. पुराने ज्ञान भण्डारके पुस्तकोंकी वस्त्र प्रमुखसे रक्षा करे. नवीन रुमाल पाठा ठवणी माला कापी पाटी कलम स्याही प्रमुख ज्ञानोपकरण करावे. आप पढे पढावे. सुने सुनावे, आगमका बहुमान करें

यथा शक्ति क्रिया करे, कुछभी आगम विरूद्ध न करे, अन्तरंग भक्ति करे वहीभाव भक्ति हैं. इस भक्ति करनेसे अनन्य चर्तुष्टयीको प्राप्त होता है, और बहुमानसे ओली पर्यन्त नये २ शास्त्र पढे, इसप्रकार श्रुतपदके आराधनसे मनुष्यको ज्ञान प्राप्त होता है ॥ श्रुत पदके आराधनसे रत्नचूड़ तीर्थंकर हुए ॥

॥ इति एकोनविंशतितम पदाराधन विधि ॥

॥ अथ विंशतीतम पदाराधन विधि ॥

"ॐ णमो तित्थस्स" इस पदकी २० माला जप करके साधुके तथा श्रावकके गुण प्रमाण प्रदिक्षणा देते हुवे नीचे का दोहा बोलते हुवे खमासमणा देवे।

॥ दोहा ॥

तीर्थ यात्रा प्रभाव है, शासन उन्नति काज।
परमानंद विलासता, जय जय तीर्थ जहाज॥

१ सर्वतः प्राणातिपात विरमणव्रते श्री साधु तीर्थाय नमः
२ सर्वतो मृषावाद विरमणव्रते श्री०
३ सर्वतोऽदत्तादान विरमणव्रते श्री०
४ सर्वतो मैथुन विरमणव्रते श्री०
५ सर्वतः परिग्रह विरमणव्रते श्री०
६ समस्त पृथ्वीकाय जीवरक्षकाय श्री०
७ समस्त अप्पकाय जीवरक्षकाय श्री०
८ समस्त तेजस्काय जीवरक्षकाय श्री०
९ समस्त वायुकाय जीवरक्षकाय श्री०
१० समस्त वनस्पतिकाय जीव रक्षकाय श्री०
११ समस्त त्रसकाय जीव रक्षकायश्री०
१२ समस्त क्रोध दोष रहिताय श्री०
१३ समस्त मान दोष रहिताय श्री०
१४ समस्त माया दोष रहिताय श्री०
१५ समस्त लोभ दोष रहिताय श्री०
१६ समस्त रागांश विरताय समता युक्तायश्री

१७ समस्त द्वेष असुयादि दोष रहिताय सह-जौदासिन्य गुणयुक्ताय श्री साधु तीर्थाय नमः ॥ इति साधु गुणाः ॥

॥ अथ श्रावक गुणाः ॥

१ समस्त सम्यग्गुणजननी गात्र लज्जा गुण युक्ताय सम्यग् देशविरति रूप श्री तीर्थ गुणाय नमः ॥

२ दयागुण युक्ताय सम्यग् देशविरति रूप तीर्थ गुणाय नमः

३ कुमति कदाग्रह कुयुक्ति पक्षपात रहित ताय मध्यस्थ गुण युक्ताय०

४ मन वचन कायैः क्रूरता रहित सौम्यगुण युक्ताय देश०

५ समस्त विद्या सम्यग् गुण रूप राग सम्यग् देश०

६ क्षुद्रता रहित अति गम्भीरता उदारता सहित स्वपर भेद रहित सर्व जनोपकारक रूप अक्षुद्र तीर्थ गुणाय नमः

७ पूर्व भवकृत दयाधर्म फल सर्वत्र दर्शनीय संघ प्रभावना हेतु रूप तीर्थ०

८ वर्जित पाप कर्म जगन्मित्रसुखोपासनीय परमो परम कारण रूप सौम्य प्रकृति तीर्थगुणाय नमः ।

९ देश क्षेत्र काल लोक धर्म विरुद्ध वर्जन रूप जन प्रिय तीर्थ०

१० मलिनक्लिष्ट भाव रहित सरल हृदय मनोयोग अक्रूर तीर्थ०

११ इह लोके परलोके वा रोग शोक जन्म जरा मरण दुर्गति पतन भयात् सदा धर्माधिकारी रूप पापकर्म भीरु तीर्थ०

१२ परावंचक सर्वजन विश्वसनीय प्रसंशनीय भावेकतान धर्मोद्यम रूप तीर्थगुणाय नमः

१३ [illegible]
[illegible] तीर्थ०
१४ [illegible] अनर्थ
[illegible] तीर्थ०
१५ [illegible] ज्ञापक [illegible] निंदक
गुणोद्दीपक [illegible] कथा वर्जक रूप
सत्कथा तीर्थ०
१६ स्वयं धर्मशील सदानुकूल परिवार विघ्न
रहित धर्म साधन रूप तीर्थ०
१७ अतीतानागत वर्तमान हित हेतु कार्य-
दर्शक सर्वथा स्वविहित कार्य करण रूप
दीर्घदर्शि तीर्थ०
१८ सर्व पदार्थ गुण दोष ज्ञापक सुसंगति
बोधक रूप विशेषज्ञ तीर्थ०
१९ वृद्ध परम्परा ज्ञापक सुसंगति रूप वृद्धा-
नुगत तीर्थ०
२० सर्व गुण मूल रत्नत्रयी तत्वत्रयी शुद्धता
प्रापक विनय रूप तीर्थ०

२१ धर्माचार्यस्य बहुमान कर्ता स्वल्पोपकार-मपि अविस्मर्ता परगुण योजनोपकार करण सदा परहितोपदेशककरण कारण रूप परहितकारि तीर्थ०

२२ अल्प बहुश्रुत तप क्रियादि योग्यता ज्ञापक यथानुकूल धर्मप्रापक. सर्व स्वकार्य साक्षि-रूप लब्ध लक्ष तीर्थ०

इत्यादि प्रकारसे स्तुति करके वन्दना करे, पीछे २५ लोगस्सका काउस्सग एकाग्र चित्त से करें पुनः पदकी स्तुति करें, जैसे तीर्थ किसको कहते हैं बड़ी नदी अगाध बहती हो उसमें सब जगह नहीं उतरा जाता किन्तु जिस जगह घाट होता है वहां उतरा जाता है उसीको घाट या उतारा कहा जाता है, वह घाट व्यन्तराधिष्ठित होवे अथवा कोई देव किसीपर प्रसन्न हुआ हो तो वह घाट तीर्थ कहा जाता है और वहां मिथ्यात्वी सं

सारी लोग स्नानादि क्रिया करते हैं और
अनेक प्रकारके मूढ क्रिया करते हैं सो द्रव्य
तीर्थ है ॥ और चतुर्विध संघ भावतीर्थ है. क्यों
कि कर्म संसाररूपी बड़ा समुद्र है उसको पार
उतरनेका घाट सुखोत्तार है अनादि संसार
भ्रमणजनित श्रम तापकी हानि होती है और
अनन्तानुबन्धी प्रमुख कषायरूप अति तृष्णा
(प्यास) लगी है वो शान्त होती है और
कर्मफल धुल जाता है. विशुद्ध अध्यव- सा
रूप नौकापर जो चढता है सो क्षणमा
उस समुद्रके पार पहुचता है नहीं तो जि
जगह गहरापानी हो वहां नाव भी हो तोभ
जाना मुश्किल होता है यहां भावतीर्थ घ
में अनुक्रम अध्यवसायवानको तारनेके लि
सर्व विरति देशविरति नाव है उसके अवल
बनसे मनुष्य पार हो जाता है इसमें संसा
रूपी समुद्रके पार पहुचानेको यही नाव

और सुरासुरसे वन्दित चरण ऐसे यतितीर्थ हैं और इसी यतिरूप तीर्थका सेवन हमारा परम साधन हैं यही तीर्थ सुखका स्थान हैं, इसी के संगसे सर्व कर्म नष्ट होवेगे, इसीके संग से सर्व अध्यात्मिक सम्पदा मिलेगी इसवार तो हमको तीर्थका सेवन परम धर्म करणीय हैं। इत्यादि स्तुति करके श्री तीर्थ प्रभाव पूर्व पुरुष साधक श्रावकोंको भोजन कराकर अनुमोदन करे, पारणेंमें स्वामी वत्सल प्रभावना करे, अमारीका पटह बजावे, श्री संघ सहित तीर्थ यात्रा रथयात्रा करे, अथवा १७ प्रकारी २१ प्रकारी १०८ प्रकारी यथाशक्ति पुजा करावे जिस प्रकार जीव धर्म को अनुमोदन करे, धर्मको स्वीकार करे. वैसी उन्नति करे अथवा जिन बिम्ब भरावे प्रतिष्ठा करावे सातो क्षेत्रकी उन्नति करे, संघमे दुखी को सहाय करे ४५ आगम सूत्रका मूल अथवा अर्थ

चैत्यवंदन ६

॥दोहा॥

वीस स्थानक साधना, साधे जो नरनार।
तीर्थंकर पदवी वेर, वन्दूं वारंवार ॥

(हरिगीत)

ाव पंथ सारथवाह श्रीअरिहंत पद पहिले नमूं,
ाव अचल और अनंत,अव्यावाध सिद्ध सुपद
मूं। वर ज्ञान दर्शन चरण भूमि संघ प्रवचन
द नमूं,ज्ञानादि पंचाचार युत आचार्य पद अनु-
म नमूं ॥सद्धर्म में थिर-करण, कारण थिविर पद
विनय नमूं, निज पर समय पाठक वहुश्रुत
क्तिभर भावे नमूं। इच्छा सुरोधन घोर तप सा
क तपस्वी पद नमूं, सर्व ज्ञभाषित दिव्य आग-
ज्ञान पद पावन नमूं॥ तत्त्वार्थ में शंका अशं-
केत,भाव दर्शन पद नमूं, शुभ ज्ञान दर्शन चरण
ायक वर विनय पद को नमूं। चरण करणादि
क्रिया चारित्र पद निर्भय नमूं, शील व्रतादिक
ाधना पद, ब्रह्मचर्य सदा नमूं ॥

प्रति समय उपयोग आदिक भावना हित
नमूं. बारह प्रकारे बाह्य अभ्यंतर सुतप गहकि
नमूं । सतपात्र में शुभदान गुणी कराय त्याग
सुपद नमूं, दश विध महागुण भाव वैयावच्च
पद गतमद नमूं. ॥ औषध प्रमुख से साधुजन
सुखकर समाधिपद नमूं अक्षर पद श्लोकादि ग्र
अपूर्व श्रुत पद नित नमूं । गुरु ज्ञान पठि
मनादि श्रुत बहुमान पद सादर नमूं, प्रवच
प्रभावन पद धरम उन्नति करण कारक नमूं

॥दोहा॥

सुखसागर भगवान 'जिन- हरि' पूजित पद सार
लट-भंवरी के न्याय से ध्याउं धन अवतार ॥

चैत्यवन्दन- ७

(रामगिरि रागेण- गीयते)

विंशति स्थानकाराधनायोगतः
संभवेत्तीर्थंकर-नामकर्म
तीर्थकृन्नाकर्म-प्रभावादहो
जायेतऽनन्तगुणसिद्धि शर्म ॥ विंश ॥

जे भवियण सेवे सदा, भावे स्थानक वीस ।
ते तीर्थंकर पद लहे, वंदे सुरनर ईस ॥२॥
अरिहंतादिक पद सदा, भजिये तप करि शुद्ध
अति निर्मल शुभ योगता, करिये तसु गुण लुद्ध ।
॥३॥

॥ श्री वीस स्थानक स्तवन ॥

स्तवन —१

(तर्ज सिद्ध चक्र पद वंदा....)

ीस थानक जयकारी रे सेवो उपकारी अवि-
कारी
ीर्थंकर पद हेतु भवोदधि तारण सेतु सुखकारी
रे सेवो वीस थानक ॥टेर॥
अरिहंत सिद्ध सुपावन प्रवचन आचारज गुण-
धामी
थिविर बहुश्रुत दिव्य ततस्वी ज्ञान परम अभि-
रामी रे सेवो०॥१॥
दर्शन विनय चरण शीलव्रत क्रिया करम पावे

सुख सागर भगवान जिन, हरि पूजित जगदीश।
तन्मय वंदू तीर्थ पति, उपकारी चौवीस ॥५॥

चैत्यवन्दन ९

विजयि देव जिनेश्वर विश्व में,
भव भयंकर दुख हर सदा।
विशद वीस सुथानक सेवना,
विधि दिखाइ नमूं शुभ भावसे ॥१॥
जगत मे जितने पद और हैं,
परम आतम उन्नति के लिए
विलसते सब थानक वीस में,
प्रभु दया नित सेवन मै करूं ॥२॥
सुखनिधे भगवन् हरिपूज्य हैं,
सुखद शक्ति कृपा कर दीजिये।
कर्म शत्रु हटाकर मैं करूं,
तव पदाम्बुज पावन सेवना ॥३॥

चैत्यवन्दन १०

ज्ञान अंगे भाखिया, जप तप विविध प्रकार।
विंशतिपद तप सारखा अवर न कोई उदार ॥१॥

जे भवियण सेवे सदा, भावे स्थानक वीस ।
ते तीर्थंकर पद लहे, वंदे सुरनर ईस ॥२॥
अरिहंतादिक पद सदा, भजिये तप करि शुद्ध
अति निर्मल शुभ योगता, करिये तसु गुण लुद्ध ।
॥३॥

॥ श्री वीस स्थानक स्तवन ॥

स्तवन —१

(तर्ज सिद्ध चक्र पद वंदा....)

ीस थानक जयकारी रे सेवो उपकारी अवि-
कारी
ीर्थंकर पद हेतु भवोदधि तारण सेतु सुखकारी
रे सेवो वीस थानक ॥टेर॥
अरिहंत सिद्ध सुपावन प्रवचन आचारज गुण-
धामी
थिविर बहुश्रुत दिव्य तपस्वी ज्ञान परम अभि-
रामी रे सेवो०॥१॥
दर्शन विनय चरण शीलव्रत क्रिया करम पावे

तप पद त्याग विराग वैरागी शुद्ध समाधि
जगावे रे सेवो०॥२॥

अपूर्वश्रुत अभ्यास ज्ञान बहु मान अबोध निवारे
तीर्थ प्रभावना करते आतम, परमातम पद धारे
रे सेवो०॥३॥

प्रति पद महिमा अनुपम अद्भुत श्री सद्गुरु
परतंत्र

सरल अशठ थिर भावे साधक विचरे भाव स्व
तंत्र रे सेवो०॥४॥

प्रतिपद व्रत छठ अट्ठम भाषे वीस वीस जिनराया
ज्ञाताधर्म कथादिक पावन सूत्रे भेद बताया रे
सेवो०॥५॥

तप पद में अधिक तप तपते आठ करम तप जावे
कनकोपलवत आतम निर्मल, ज्योति आप जगावे
रे सेवो०॥६॥

था विरहित जीवन पावन विषय विकार
विहीना

बीस थानक शिव थानक सेवा दाता सच्चित
आनंदपीना रे सेवो०॥७॥

प्रातः संध्या आवश्यकविधि प्रतिक्रमण शुभ भावे
पदगुण माला ध्याने पूरब संचित पाप हटावे
रे सेवो०॥८॥

देववंदन गुरुवंदन सविनय तन्मय तद्गुणयोगी
अविराधक साधक हो अव्याबाध परमसुख भोगी
रे सेवो०॥९॥

चउ शत व्रत छठ अट्ठम तपसे आराधन हो पूरा
तीर्थंकर पद नूर प्रगट हो, कर्मों का चकचूरा
रे सेवो०॥१०॥

उद्यापन अधिकारी होते सुखसागर भगवाना
हरि पूजित जिन भाषित साधन साधे पुण्य
प्रधाना रे सेवो०॥११॥

स्तवन २

(तर्ज-बिना प्रभु पासके देखे—)

नमूं जिन देव जयकारी, हृदय शुद्धभाव लाकरके

अनुपम आतम दर्शन योगे, परमातम पद ध्याने
जल में कमल रहे ज्यों जीवन, साधक पद सन्माने ॥ रे तीर्थ ॥१॥
महा मोह मति मूढ जगत में जन हो जिन शासन रागी
आधि व्याधि उपाधि मुक्त हो, भाव सुखी बड़ भागी ॥२॥
तीन भुवन उपकार भाव कल्याण मित्र जयकारी
पुण्य महोदय गुणी महाशय, अविकारी अवतारी ॥३॥
बीस स्थानक महासाधना साधक निज भव तीजे
उत्तरोत्तर सुकृत सुखभोगी, प्रभुता गुण रस भींजे ॥ ४॥
संघ चतुर्विध तीर्थ थापते, अद्भुत अतिशय धारी
तीर्थंकर वर नाम कर्म को सफल करे बलिहारी ॥ ५॥
जनम मरण जीवन कल्याणी जग कल्याण विधाता

ीर्थंकर दर्शन धन पाऊं, धन दिन पुण्य
प्रभाता ॥६॥

ाभु दर्शन परमातम पूरण जो कर पावे प्राणी
ज्योतिर्मय जग में वह पावन खोले निज गुण
खाणी ॥७॥

अरिहंतादिकबीस पदों की,सेवा शिव सुखकारी
अप्रमत्त भावे कर भविजन. पावे पद अविकारी,
॥८॥

ाष्ट सिद्धि नवनिधि निज घर में,प्रगटे परमोदारी
ोन लोक साम्राज्य सम्पदा, दासी बने विचारो
॥९॥

ीस स्थानक विधि जिन आगम, गुरु गम से
नरनारी
ाराधे साधे निज सिद्धि,अजरामर पदधारी ॥१०॥

ुखसागर भगवान महोदय, जिनहरि पूजित
स्वामी
ोस स्थानक गुणी गुण गाउं,सादर सदा नमामि
रे तीर्थंकर वन्दो ॥११॥

(...)

स्तवन ...

तर्ज-(मुनि ... मनुं ... न पन्नाग्गे मीनथी।)

चित्त हरख धरी,अनुभव अंगे वीस पदपद वंदि
शिवरमणि वरि केवल गुणिंग महाग कगी निर्म
दिये (अनुभव.

ये वीस चरण अशरण शरणाचिर संचित दुरित
तिमिर हरणा

नित चित्त ये पद समरण करणा ॥१॥

ये पद समरण जिण चित धरिया,तरिया तरसे तरे
भव दरिया

सदनंत भविक सहु भयहरिया॥चित्त॥२॥

ये पदगुण सागर मनुहारा, वर्णन तरणा ये बहुहारा

इन्द्रादिक सुर न लह्यो पारा॥चित.॥३॥

ये पद अतिशय महिमा धारा अमृत पद कमला
भरतारा

[illegible] ॥चित.४॥

ननहर्ष सूरीन्दके शिव करणा चन्द्रामल गुणविं.
शति करणा
यज्यो प्रभु अरजये अवधरणा ॥ चित.॥५॥

स्तवन—६

(चाल-कंद किरण शशि ऊजलो रे देवो)
नुभव परमानंदशु रे वाला. परमातम पद वंदो रे
रम निकंदो वंदी ने रे वाला लहि जिनपद चि
नन्दो॥१॥
गन पएसंतर वली रे वाला.समयान्तर अणफरसी रे
व्य सगुण परजायना रे वाला एक समय विध
दरसी रे ॥२॥
क समय ऋजु गति करी रे वाला, भए परमपद
रामी रे
भांगे सादि अनंतमा रे वाला, निरूपाधिक
सुखधामी रे ॥३॥
अखिल करममल परिहरी रे वाला, सिद्ध सकल
सुखकारी रे

विमल चिदानन्द घन थया रे वाला, वरइकतिम
गुणधारो रे ॥४॥
उत्पन्नता वाल विगमता रे वाला, ध्रुवता त्रिप
दी संगे रे
प्रभु में अनन्त चतुष्कना रे वाला, मोहे शमकम
भंगे रे ॥५॥
पनर भेदै ए सिद्ध थया रे वाला, सहजानंद
स्वरूपी रे
परम ज्योति में परिणम्या रे वाला अव्याबाध
अरूपी रे ॥६॥
जिनवर पण प्रणमे सदा रे वाला, एहने दीक्षा
अवसरे रे
तिण प्रभुपद गुणमालिका रे वाला, कंठे धरिये
सुपरे रे ॥७॥
हस्तिपाल भवि भगतिशु रे वाला, सिद्ध परम
पद भजिने रे
पद श्री जिनहरखे लह्यो रे वाला, परगुण
परिणति तजि ने रे ॥८॥

॥ स्तवन ७॥

(श्री सिद्धाचल भेटीये ए देशी)

वीस थांनक तपसेवीए। थक्कर शुभ परि-
म लालरे। तीजे भव सेव्यो थको। बांधे
र्थं कर नाम लालरे॥ वी० ॥१॥ तपरत्नना
थकी कही। ज्ञाता अङ्ग मझार लालरे।
ण जो भवि तुमे भावसुं। चित्तसे करिये
त्वार लालरे॥ वी० ॥२॥ सुविहित गुरु पासे
हे। वीसथानक तप गृह लालरे। निरएहपण
भ महुरते। उचरीजे ससनेह लालरे। वी०
३॥ अरिहंत सिद्ध प्रवचन नमूं. सूरिथिवर
वझाय लालरे। साधु नांण दंसण अरु. विन-
नमूंउल्साय लालरे॥ वी० ॥४॥ चारित्र बंभ
क्या पदे तप गोयम जिन इस लालरे।
ारित्रज्ञानने श्रुत भणी नमूं तीर्थ पद वीस
ालरे ॥ वी० ॥५॥ वीसदिवसमें एकही पद
ुणनो करसेव लालरे। अथवा दिन वीसां-

कर, तिसके गुण चित्तधार लालरे । काउसग्गा पर दक्षण, मुख गणिए नवकार लालरे ॥वी०॥ ॥१३॥ जिस पदकी स्तवना सुणे, कीजे जिन पद भक्ति लालरे । पूजन शुभमन साचवे दिन दिन चढ़ती शक्ति लालरे ॥ वी० ॥१४॥ सूतक जनम ऋतु कालमें, करि धार्योउपवास लालरे। सो लेखे नहिं लेखवो, नकेवल तप जास लालरे वी० ॥१५॥ सावज्जत्याग पणो करे शोक न धारे चित्त लालरे। शील आभूषण आदरे, मुख सुं बोले सत्य लालरे, ॥ वी० ॥१६॥ जेठ, आषाढ वैशाखमें, मिगसर फागुण मांह लालरे। इनषट मास मांहिने, व्रत ग्रहिये वड़ भाग लालरे ॥ वी० ॥१७॥ तपपूरण हुवांथकां. उजमणो निरधार लालरे। कीजे शक्ति विचारने, उच्छवविविध प्रकार लालरे ॥वी०॥१८ वीस वीस गिणती तणा, पुस्तक पुठा आदि लालरे । ज्ञान तणी पूजा

करे, मुक्ति जो चावे नित्य लालरे ॥वी०॥
॥१९॥ फलवर्धी नगरनी श्राविका कीधी विधि
चित्त लालरे । जनम सफल करवा भणी ओहि
जमोक्ष उपाय लालरे ॥ वी० ॥२०॥ (कलश)
इमवीर जिनवरतणी आज्ञाधार चित्त मझारए।
सहुदेव आगम तणी स्तवनाकरी तपविधि सा
रए ॥ वसुनंद सिद्धि चंन्द वरसे चैत्र मांस सुहंक
र । मुनि केशरि शशिगच्छ खरतर भणी स्त
नामनहक ॥२१॥

(आदि जिणंद मया करो—एदेसी)

बीस स्थानक पद ध्याइये, जगनायक पद
[illegible]। अरिहंतादिक पद नमो. सकल जं
[illegible] करे ॥वी०॥१॥ सिद्धि प्रवचन आचा
[illegible], स्थविर पाठक पद मोहरे। साधु ज्ञान
[illegible]. विनय सदा मन मोहरे ॥वी०॥
[illegible] मन नम्यो. गुणिजन कां
[illegible] क्रिया तप गौतम. भवि

श्री विंशति स्थानक पद साधु
स्फूर्जत्सुरेन्द्रादिक तत्पवित
ये तन्मयत्वं दधते जगत्यां,
तन्नौमि सिद्धान्निज रूपसिद्धान् ॥२॥
श्री विंशतिस्थानक सन्निधानं,
जैनागमे प्रोक्तमगम्य रूपम् ।
रत्नत्रयं सत्य मुक्ताभिरामं,
भव्या भजन्तां भवरोगमुक्त्यै ॥३॥
श्री विंशतिस्थानक साधकानां,
प्रेक्षत्पदं स्यादृहरि पूज्यमेव ।
समेऽपि देवाः सततं समन्तात्
साहाय्यमिद्धं ददते स्वयं वै ॥४॥

खरतरगच्छीय श्रीमज्जैनाचार्य श्री जिनकृपा चन्द्र सुरीश्वर जी० म० का बनाया चैत्यवंदन

श्री अरिहन्त अनंत कांति, सिद्ध निजगुण रामी ।
प्रवचन आचारिज स्थविर, उवज्झाया हित कामी ॥१॥
साधु नाण दंसण नवम, विनय चारित्र वखाणो ।
ब्रह्मक्रिया तप गोयम, जिन वेयावच्च जाणो ॥२॥
समाधि अपूर्वज्ञान ग्रहे, श्रुत भक्ति नित सार ।
तीर्थ प्रभावन वीसमो, निरूपम का दातार ॥३॥

मथन नाण जगदीस, सकल सेवा करो सदा।
इक दो त्रण पद जपो, बावीस जिनवर पद-मुदा ॥४॥
एवीशति थानक कहियाजे, ज्ञाताजे जिनचन्द।
ए, सेवनथी भवी लहै, त्रिभुवनपति 'कृपाचंद' ॥५॥

पू. प्रवर्तिनी विचक्षण श्री जी म. सा. द्वारा बनाये हुवे चैत्यवंदन व स्तवन व स्तुति

(१) अरिहन्त पद का चैत्यवन्दन

जय जय श्री जिनराज मैं, शरणे आज आयो।
चिन्तामणि वर कल्पतरु, महापुण्ये पायो ॥१॥
दर्शन ज्ञानावरण युग, अन्तराय मोह जान।
घातिचतुष्क विनष्ट कर, पायो केवल ज्ञान ॥२॥
सम्प्रति विंशति जिन नमो, प्रथम पदे जयकार।
वाणीगुण पैंतीस वर चौतिस अतिशय धार ॥३॥
देवपाल राजा हुए पूजी जिनवर देव।
होंगे श्रेणिक तीर्थ पति, महावीर पद सेव ॥४॥
सुख सागर भगवद् विभो, पुण्य पुञ्ज जगन्नाथ।
'स्वर्ण' विचक्षण को शरण, देकर करो सनाथ ॥५॥

(२) श्री सिद्ध पद का चैत्यवन्दन

सिद्ध बुद्ध परमातमा, अलख अगोचर ईश।
अजर अमर अविनाशि प्रभु, धारक गुणइकतीस

जम्बुघात की द्वीप है, पुष्कर अर्द्ध प्रमाण।
लख पैंतालिस मनुजलोक सिद्ध शिला वरठाण ॥२॥
सहजाकृति निरुपाधि सुख, भोक्ता पूर्णानन्द।
निर्मल निस्सङ्गो प्रभू नीरुज निरवायन्द ॥३॥
हस्तिपाल नृप पालिया, द्वितीय पद महन्त।
वर्ण गन्ध रस स्पर्शविन, गुण चतुष्क अनन्त ॥४॥
सुख सिन्धो। भगवान पद दीजे त्रिभुवनवास।
कहे "विचक्षण" विनय युत, मांगू यही त्रिकाल ॥५॥

(३) श्री प्रवचन पद का चैत्यवन्दन

जय जय प्रवचन पद बड़ो, विंशतिपद तप माँहि।
तीर्थंकर जितने हुए, आराधे उच्छांहि ॥१॥
जिन प्रवचन शाश्वत नमो, नहीं आदि नहिं अन्त।
जीव अनन्ते तिरगये, और तिरेंगेऽनन्त ॥२॥
देश सर्व विरती धरें, सङ्घ चतुर्विध रूप।
भरत प्रमुख आराध कर, दूर करे भवकूप ॥३॥
धर्म का मार्ग है यही, मोक्ष बीज यह सार।
'हर्ष' आगम 'भव भव' चहे, सुविचक्षण हितकार ॥४॥

(४) श्री आचार्य पद का चैत्यवन्दन

तीजे पद सुहाना है, शासन थंभ समान।
जिनवर सूर्य अभाव में सूरि प्रदीप सुजान ॥१॥

दर्शन ज्ञान चारित्र तप,-वीर्य सुपञ्चाचार ।
इनके पालक मुनिवरा, आचारज गणधार ॥२॥
छत्तीसी छत्तीस के, किन्तु बारसत भेद ।
विसहद संड गुणधरा धरे हरे भवखेद ॥३॥
गुणवर का मूरत सिन्धु है, सूरीश्वर सम्राट ।
इनसे शोभित नित रहे, वीर प्रभु का पाट ॥४॥
पुरुषोत्तम नृप सूरि पद धरे हरे अगत अघताप ।
'स्वर्ण' विचक्षण के सदा, सूरीश्वर मां बाप ॥५॥

(५) श्री स्थविरपद का चैत्यवंदन

ज्ञानवृद्ध पर्यायवृद्ध, वयोवृद्ध गुणगान ।
लौकिक लोकोत्तर थविर, कहे दसविध ठाणांग ॥१॥
तीर्थङ्कर गणधर सभी, नवदीक्षित मुनि होय ।
सौंपे स्थविर मुनीन्द्र को, देते शिक्षा दोय ॥२॥
शिथिल बने मुनिमार्ग से, दृढ़ करदे उपदेश ।
पंचमपद आराधना, प्रेम से करो हमेश ॥३॥
पद्मोत्तर नरपति बने, सुखसागर भगवान ।
सुवरण ज्योति प्रकट हो, मिटु 'विचक्षण' ज्ञान ॥४॥

(६) श्री उपाध्यायपद का चैत्यवन्दन

पाठकपद छट्ठे नमूं, ज्ञानाकर गुणवन्त ।
द्वादशाङ्ग गणिपिटक धर, गुण पच्चीस महन्त ॥१॥

अंग इग्यार द्वादशउपांग, छेद पयन्ना मूल ।
पैंतालिस आगम भरे, जिन शासन अनुकूल ॥२॥
श्रमणसंघ को वाचना, दें अप्रमत्त हमेश ।
पाठकपद से जिन बने, महेन्द्रपाल नरेश ॥३॥
श्रुतसागर सुवर्णधर उपाध्याय भगवान ।
[illegible] ॥४॥

(१०) श्री विनय का चैत्यवन्दन

विनयमूल जिनमत है, [illegible] ।
[illegible] करो, [illegible] ॥१॥

सर्व गुणों में प्रथम गुण, विनय कहा भगवान ।
विनय विना समकित नहीं न फले चारित्र ज्ञान ॥२॥

अर्हत सिद्ध मुनि थविर, कुलगण संघ महन्त ।
धन्ना सदृश विनय कर, शीघ्र करो भव अन्त ॥३॥

सुख का सागर विनय है, विनय स्वर्ण रस जान ।
ज्ञान रत्न सह विनय गुण, चढ़े 'विचक्षण' दान ॥४॥

(११) श्री चारित्रपद का चैत्यवन्दन

ग्यारमपद चारित्र जय, शिवपद सुख दातार ।
सात आठ भव से अधिक, रहे नहीं संसार ॥१॥

समृद्धि षट् खण्ड की, तृणवत् करके त्याग ।
सर्वविरति स्वीकारते, चक्रवृत्ति महाभाग ॥२॥

अन्तर्मुहूर्त्त साधना, शुद्धभाव से होय ।
अनन्तकाल की कर्मरज, रिक्त करे मलधोय ॥३॥

चारित्र बिन नहीं मोक्ष है, रुलड़े काल अनन्त ।
पापी अधर्मी दुष्ट भी, शिव गये बन मुनि सन्त ॥४॥

वरूणदेवनृप पालिया, सुख स्वरूप शिवराज ।
स्वर्ण विचक्षण [illegible]

(१२) श्री ब्रह्मचर्यपद का चैत्यवन्दन

नमो संभवय धारका, द्वादशपद ओकार।
करण योग देवनर, भेद अठारह धार ॥१॥
सभी व्रतों में व्रत बड़ो, ब्रह्मचर्यव्रत सार।
सुर सुरेन्द्र भी नमत है, ब्रह्मचारि नरनार ॥२॥
विषय विजयी स्थूलि भद्र, किया सुदुष्कर काम।
चौराशी चौवीशि तक, विजयवन्त जसु नाम ॥३॥
कोशा वेश्या भवन में ध्यान धरें चउमास।
द्वादशवर्षी स्नेह तज करी श्राविका खास ॥४॥
विजयसेठ विजयासती, अटल ब्रह्मव्रतिमान।
दान सहस चौराशि मुनि, फल कहे श्री भगवान ॥५॥
वर न सके सुरराज भी, इक दिन भी ब्रह्मचर्य।
शीलव्रतधारी नमो, श्रावक औ मुनिवर्य ॥६॥
चन्द्रवर्म सुखपद लियो, ब्रह्मव्रत सुवर्णस्नान।
'विचक्षण' हार्दिक प्रार्थना, दो ब्रह्मव्रत दान ॥७॥

(१३) श्री क्रियापद का चैत्यवन्दन

क्रियाप्रवर्त्तन रहित घन, प्रतिदिन नमूं मुनीश।
कर्मबन्ध कारण क्रिया, कहि प्रभु ने पचवीस ॥१॥
दान शील तप भाव वर, आवश्यक प्रणिधान।
ये सब कर अक्रिय बनो, लहो चवदम गुणथान ॥२॥

[illegible] ।

[illegible] ॥३॥

[illegible] ।

[illegible] ॥४॥

(१४) श्री तपपद का चैत्यवन्दन

वीरप्रभु आराधियो, तप कर विविध प्रकार ।

कर्म निकाचित छेदन करे, क्षमा सहित अणगार ॥१॥

लब्धी आमोसहि प्रमुख, प्रकटे तप सुप्रभाव ।

कल्पवृक्ष चिन्तामणी, है तप शिवसुखदाव ॥२॥

नन्दन मुनि भव वीर प्रभु, तपोमूर्ति साक्षात ।

लख ग्यार पैंताल सहस, मासक्षमण [illegible] सात ॥३॥

नन्दिषेण मेतार्यमुनि, सुभद्रा शालिभद्र ।

दृढ़प्रहारि खंधक प्रमुख, तप कर तिरे मुनीन्द्र ॥४॥

कनक केतु नृप जिन बने, सुखसागर तपधार ।

स्वर्णोपम तप आचरण, चढ़े 'विचक्षण' सार ॥५॥

(१५) श्री गौतमपद का चैत्यवन्दन

वीर प्रभु के प्रथम शिष्य, गणधर गौतम स्वाम ।

सर्व लब्धि सम्पन्न को- पनरम पदे प्रणाम ॥१॥

पृथ्वि मात वसुभूति सुत, चौदह विद्या निधान ।

वीरचरण रज मधुप बन, पाया केवलज्ञान ॥२॥

प्रभु को सुवरण शासन पायो ।
यत्न से टालो भव दुख को ॥ भवि० ॥९॥
अनुपम वीसस्थानक तप सेवा ।
भव भव मिले 'विचक्षण' को ॥भवि०॥१०॥

स्तवन नं० २

(तर्ज-अर्ज सुनो गुरुदेव)

तप वीसस्थानक जयकार, आराधोपूरण प्रेम धरी (भविजनहर्षधरी)
करलो सफल अवतार, तप जप संयम शुभ भाव भरी ॥टेर॥
तीजे भव में अरिहन्त सबही, इस तप को आराधे ।
तीर्थंकर शुभ नाम कर्म को, यही महाताय बांधे ॥तप०॥१॥
पद पहले अरिहन्त प्रभु है, चौतीस अतिशय धारी ।
बारह गुण शोभे भगवन्ता, विश्व सकल उपकारी ॥तप०॥२॥
सिद्ध आठ इकतीस गुणधारी, प्रवचन गुण सत्तावीसा ।
सूरीश्वर छत्तीस छत्तीसी, स्थविर दश गुण ईशा ॥तप०॥३॥
पाठक गुण पचवीस अलंकृत, सत्ताईस मुनिराजा ।
ज्ञान इकावन समकित सड़सठ,बावन विनय गुणराजा॥तप०॥४॥
चारित्र सित्तर ब्रह्मचर्य गुण, अष्टादश स्वीकारो ।
क्रिया पचीस रहित हो करके, द्वादशविधतप धारो ॥तप०॥५॥
गौतम पद बारह विध वन्दो, विचरत वीस जिनन्दा ।
[illegible]त्तरे बावन्न अभिनव, धारोज्ञान दिनन्दा ॥तप०॥६॥
[illegible]स भेद श्रुत सीखो, अज्ञान अनादि निवारो ।
[illegible]मो तीर्थ पद को, नित अट्ठतीस विचारो ॥तप०॥७॥

प्रभु को सुपाप शासन पायो ।
मरण से टालो भव दुःख को ॥ भवि० ॥९॥
अनुपम बीसस्थानक तप सेवा ।
भव भव मिले 'विचक्षण' को ॥भवि०॥१०॥

स्तवन नं० २

(तर्ज-अर्ज सुनो गुरुदेव)

तप बीसस्थानक जयकार, आराधोपूरण प्रेम भरी (भविजनहर्षधरी)
करलो सफल अवतार, तप जप संयम शुभ भाव भरी ॥टेर॥
तीजे भव में अरिहन्त सबही, इस तप को आराधे ।
तीर्थंकर शुभ नाम कर्म को, यही महातप बांधे ॥तप०॥१॥
पद पहले अरिहन्त प्रभु है, चोतीस अतिशय धारी ।
बारह गुण शोभे भगवन्ता, विश्व सकल उपकारी ॥तप०॥२॥
सिद्ध आठ इकतीस गुणधारी, प्रवचन गुण सत्तावीसा ।
सूरीश्वर छत्तीस छत्तीसो, स्थविर दश गुण ईशा ॥तप०॥३॥
पाठक गुण पच्चीस अर्हन्त, सत्ताईस मुनिराजा ।
ज्ञान इकावन समकित सड़सठ,बावन विनय गुणराजा॥तप०॥४॥
चारित्र सित्तर ब्रह्मचर्य गुण, अष्टादश स्वीकारो ।
क्रिया पचीस रहित हो करके, द्वादशविधतप धारो ॥तप०॥५॥
गौतम पद बारह विध वन्दो, जिनरत बीस जिनन्दा ।
संयम सत्तर बावन अभिनव, धारोज्ञान दिनन्दा ॥तप०॥६॥
चौदह बीस भेद श्रुत सीखो, अज्ञान अनादि निवारो ।
पूजो प्रणमो तीर्थ पद को, नित अट्ठतीस विचारो ॥तप०॥७॥

उभय काल आवश्यक, पाप कर्म सब हरिये।
प्रातः शाम मध्यान्ह समय में, देववन्दन विधि करिये॥तप०॥८॥
एकासन नीवी आंबिल, उपवास छट्ठ से सेवा।
जघन्य मध्यम उत्कृष्टो तप, कर सुखसागर लेवो॥तप०॥९॥
एक एक पद का आराधन भी, त्रिभुवन पति बनावे।
सुवर्ण अवसर मिला यतन से, "विचक्षण" ज्योति जगावे॥१०॥

स्तुति न० १

अरिहन्त सिद्ध प्रवचन सूरीश्वर, स्थविर पाठक मुनि वन्दो जी। ज्ञान सुदर्शन विनय चारित्र पद ब्रह्मचर्य सुखकन्दोजी। शुभ क्रिया महातप गोयम जिन, संयम धर आनन्दोजी। अभिनय थी श्रुत ज्ञान तीर्थ पद ध्यान हर्ष आमन्दो जी॥१॥ तीर्थंकर अरिहन्त बने जो और बनेंगे अनन्तेजी। विंशति पद अथवा एक एक पद, आराधे मन खन्ते जी। भरते रावत महा विदेहे, कर्म भूमि प्रसिद्धोजी अनन्त कालगत अनन्त तीर्थपति, वन्दु भाव-विशुद्धाजी॥२॥ अंग इग्यारह चौदह पूर्व, दृष्टिवाद बखाणो जी। अरिहन्त भाषित गणधर गुम्फित, द्वादशांगी श्रुत जाणोजी। श्रुत ज्ञानो ही सर्वाराधक भगवती सूत्र विचारो जी। आतम ज्ञान अमृत रसपोयो, जन्ममरण दुःख टारोजी॥३॥ अनुभव दृष्टि सम्यग् दृष्टि, देव देवी जयकारीजो। वीसस्थानक महातप कारक, रोग सोग दुःखहारीजो। खरतरगच्छ सुखसागर भगवन, त्रैलोक्या नन्द दाता जो। सुवर्ण ज्ञानसुयत्न से पावे, "विचक्षण" प्रभु पद त्राताजी॥४॥

वली भगवान के पास जाकर चारित्रग्रहण किया। दो दिन क निरतिचार संयम पाल कर सौधर्म स्वर्ग में देवता हुआ।

अरे! दो दिवस मात्र चारित्र पालने से सिंहरथ राजा अनुपम देवता के सुख भोगने वाला हुआ। इसलिये जो दीर्घकाल पर्यन्त सम्यक प्रकार से निरतिचार संयम पालन करता है उसे क्या प्राप्त नहीं होता है? जो एक दिन भी मोह रहित, समभाव पूर्वक निरतिचार चारित्र का पालन करता है उसे कदाचित मोक्ष न भी मिले, परन्तु देवलोक का सुख तो अवश्य मिलता है। इसीलिये कहा है कि :—

प्रतिहन्तिक्षणार्द्धेन, साम्यमालंब्य कर्म तत्।
यन्न हन्यान्नरस्तीव्रतपसा जन्म कोटिभिः ॥१॥

अर्थः—'जिन कर्मों को मनुष्य करोड़ों जन्म पर्यन्त किये हुए तप से भी दूर नहीं कर सकता, उन कर्मों को सिर्फ मन के साम्य अवलम्बन से आधे क्षण में दूर कर सकता है।'

अब देवपाल राजा हो गया परन्तु मंत्री वगैरह कोई उसकी आज्ञा को नहीं मानते थे। इससे देवपाल विचार करने लगा कि 'यदि मंत्री आदि नये बनाता हूँ तो बिना कारण ये सब शत्रु बन जायगे। अब क्या करना चाहिये? सेठ जिनदत्त को बुला-कर उनकी सलाह लेना चाहिये। ऐसा विचार कर सेठ को बुलाया परन्तु सेठ भी अभिमान वश नहीं आया। तब देवपाल चितायुक्त होकर सरिता तट पर जहां युगादिदेव पर्ण कुटी में थे

वहाँ जाकर भाव पूर्वक दर्शन कर स्तुति करने लगा—'हे प्रभु! हे जगन्नाथ! हे कृपानिधान! आप जयवन्ता हो! हे दीनेश! आपने मुझे राज्य दिया परन्तु विना घी के भोजन व्यर्थ है उसी प्रकार ऐश्वर्य और प्रताप विना राज्य भोगना भी वेकार है। इसलिये हे प्रभु! जब आपने राज्य दिया है तो उसके साथ र दसों दिशाओं में मेरी कीर्ति और प्रताप फैले और सब मेरी आज्ञानुसार काम करे ऐसा उपाय करें नहीं तो जिस प्रकार होली का राजा केवल हँसी के लिये होता है उसी तरह मैं भी प्रताप रहित वैसा ही गिना जाऊँगा।'

इस प्रकार देवपाल की स्तुति सुनकर चक्रेश्वरी प्रगट हुई और कहने लगी—हे राजा तू जरा भी दिल में खेद मत और मैं कहूँ वैसा कर जिससे सब तेरे आधीन हो जायँगे। मिट्टी का हाथी बनाकर उस पर तू सवारी करना और देव प्रभ से वह हाथी जीवित होकर सब जगह फिरेगा। यह देखकर स लोग तेरी आज्ञा मानेंगे तथा अभिमान छोड़कर नमस्कार करेंगे परन्तु राज्य लक्ष्मी से उन्मत्त होकर कामधेनु के समान इच्छि फल देने वाले भगवान की सेवा मत छोड़ना। यह कहकर दे अदृश्य हो गई।

देवपाल ने पुनः भगवान की हर्ष पूर्वक स्तुति कर रा महलमें आकर कुम्हार को बुलाकर सुन्दर आकृति वाला ऐराव हाथी के समान मिट्टी का हाथी तैयार कराया। उस पर अम्बा

बाड़ी लगाकर आरूढ़ होते ही देव प्रभाव से मिट्टी का हाथी मेघ समान गर्जना करता हुआ शहर के बाहर भगवान के दर्शन करने चला। यह आश्चर्य जनक घटना देखकर सब मन में डरने लगे और सोचने लगे कि वास्तव में इसका कोई देव सहायक है। यह सामान्य आदमी का कार्य नहीं है, इसे देव सहायता करता है इसी से यह मन इच्छित कार्य कर सकता है। यह जिस पर प्रसन्न हो उसे ऐश्वर्यवान बना सकता है और रुष्ट हो जाय तो सर्व लक्ष्मी लूट कर हाथ पैरों में हथकड़ी डालकर कारागृह में डाल सकता है। इसलिये अपने अभ्युदय के लिये इसे प्रसन्न रखना चाहिये। यह विचार कर सर्व सामन्तगण और पुरजन देवपाल राजा के पास आकर दोनों हाथ जोड़कर कहने लगे-हे कृपानाथ। हे पृथ्वीपति। हमारे सब अपराध क्षमा करना। हम अज्ञानियों ने आपकी अवज्ञा की है वह हमारी वास्तव में मूर्खता है। हे कृपालु। विशेष क्या कहें? आपतो समुद्र समान गम्भीर हैं इसलिए हम अज्ञानियों पर प्रसन्न होकर हमारे अपराध क्षमा करो। हम सब आपकी आज्ञानुसार कार्य करने को तैयार हैं। इस प्रकार सबको अपने आधीन हुए जानकर देवपाल ने अपने परमोपकारी जिनदत्त सेठ को आदर पूर्वक बुलाकर बहुत सम्मान पूर्वक प्रधान मंत्री की पदवी प्रदान की। अहो। जगत में वही पुरुष धन्य है जो अपने पर किये उपकार को नहीं भुलता। दूसरे सब सामन्तों को भी अपने २ पद पर कायम रखा। इस प्रकार राज्य का सारा काम मंत्री के सुपुर्द कर निश्चित

होकर राजसुख भोगने लगा और हर्ष पूर्वक भगवान की भक्ति में दिन व्यतीत करने लगा।

इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर नगर के उद्यान में, अनेक ग्राम, नगर में विहार करते हुए बहुत मुनियों सहित केवली भगवान दमसार मुनि पधारे। सूचना मिलते ही राजा भी मंत्री, सामन्त और रानी सहित अत्यन्त हर्ष पूर्वक वन्दना करने गया। तीन प्रदक्षिणा देकर, पाँच अभिगम पूर्वक गुरु के सन्मुख उचित आसन पर बैठ गया। सुवर्ण कमल पर विराजमान होकर गुरु महाराज भवभ्रमण रूपी व्याधि से पीड़ित जीवों को अमृत की धारा के समान कल्याणकारी देशना देने लगे।

"हे भव्य जीवों! जैसे समुद्र जल का आधार है वैसे तीनों लोक के जन्तुओं के कल्याण के लिये भी जिनेश्वर प्ररूपित धर्म ही आधार रूप है। इससे चिंतामणि रत्न, कामधेनु और कल्पवृक्ष वश में होते हैं और मोक्ष सुख भी सुलभ होते हैं। इसलिए ऐसे धर्म का आदर करो। वह धर्म दो प्रकार का कहा है। एक श्रमण धर्म और दूसरा श्रावक धर्म। श्रावक धर्म सम्यक्त्व मूल बारह व्रत सहित है। श्री जिनेश्वर की उल्लासपूर्वक भक्ति करने से सम्यक्त्व निर्मल होता है। जिनपूजा के द्रव्य और भाव ये दो भेद हैं। श्री जिनेश्वर देव की आज्ञा का पालन करना—अष्ट प्रकारी आदि पूजा करना यह प्रथम द्रव्य पूजा है और उनकी स्तुति स्तवनादि गुणगान करना भाव पूजा है। द्रव्य पूजा से उत्कृष्ट देवलोक के सुख प्राप्त होते हैं और भाव पूजा से अनन्त सुखमय मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त होती है। इसीलिये कहा है कि—

सरलता से कर सकते हैं परन्तु सात्विकी भक्ति तो कोई महा भाग्यशाली व पुण्यशाली ही करते है; क्योंकि सात्विकी भक्ति सर्वोत्कृष्ट है, राजसी मध्यम है और तामसी जघन्य है। इसलिए पंडित लोग तो पिछली दो प्रकार की भक्ति नहीं करके सर्वोत्तम सात्विकी भक्ति का ही विशेष आदर करते हैं।

इसके अलावा जिनेश्वर को पांच तरह की पूजा भी बताई गई है। १-पुष्प वगैरह सेवा करना २-जिन द्रव्य की वृद्धि करना ३-यात्रा करना ४-महोत्सव करना और ५-वीतराग की आज्ञा पालन करना। इसके सिवा और दो प्रकार से भक्ति होती है। एक आभोग से दूसरी अनाभोग से। जो जिनेश्वर के गुणों को [illegible] प्रकार से जानकर उनका यथार्थ वर्णन कर विधि पूर्वक भगवान की पूजा [illegible] आभोग से द्रव्य स्तव भक्ति मानी जाती है। इससे [illegible] का नाश होता है और इससे संसार [illegible] [illegible] कर्मों का नाश होकर [illegible] होता है।

[illegible] गुणों [illegible] और पूजा विधि से अज्ञान [illegible] [illegible] भक्ति करना अनाभोग [illegible]

[illegible]

सार में अतिशय निबिड़ कर्मबन्ध करते हैं। जिस तरह मृत्यु के समय किसी रोगी को अपथ्याहार की इच्छा होती है यह अशुभ को सूचित करने वाला है उसी तरह कल्याणकारी जिन बिम्ब को देखकर जो प्राणी अशुभ भाव धारण करता है, यह उसके अनन्त संसार भ्रमण की सूचना देने वाला है। इसलिये अपना भला सोचनेवाला मनुष्य जरा भी जिन बिम्ब पर द्वेष नहीं करता है।

अब आठ दृष्टि का स्वरूप कहता हूँ सुनो

१-मित्रा-इस दृष्टिवाले को तृण की अग्नि के समान बहुत अल्पज्ञान होता है। अहिंसादि पांच यम की प्राप्ति, शुभ कार्य में खेद रहित प्रवृत्ति, भावाचार्य की सेवा वगैरह क्रिया वाला होता है और मिथ्यात्व की स्थिति तथा रस मंद होता है।

२--तारा--मित्रा से तारा दृष्टिवाले का मिथ्यात्व विशेष मंद होता है इसलिये उसका ज्ञान छाणे की अग्नि की तरह धीरे धीरे बढ़ता है। वह संतोष, तप, ईश्वर प्रणिधान, अष्टांग योग की कथा में प्रीति और गुणाजनों का विनय आदि क्रिया करनेवाला होता है।

३--बला-- इस दृष्टि वाले का तारा दृष्टिवाले से मिथ्यात्व विशेष मंद होता है इसलिये उसका ज्ञान लकड़ी की अग्नि के समान होता है। वह तत्व श्रवण करने में अत्यन्त प्रीतिवाला, चपल परिणाम रहित होता है और योग की सब क्रिया करता है।

[illegible]

[illegible] होती। इसका ज्ञान प्रदीप की प्रभा के समान होता है।

५—स्थिरा—इस दृष्टिवाले का सम्यग्दर्शन नित्य होता है। [illegible] ज्ञान रत्न की प्रभा के समान होता है। वह भ्रांति रहित [illegible] ज्ञानयुक्त, पंचेन्द्रिय के विषय में अनासक्त होता है। और सं[illegible] के सब भावों को उपाधिरूप समझकर तत्वज्ञान को ही सार समझता है। वह सम्यक्त्व में स्थिर चित्तवाला, रोग रहित मधु[illegible] वाला, सुन्दर आकार वाला अनिष्ठुर तथा धर्मध्यान को पुष्ट [illegible] वाला, मैत्री आदि भावना युक्त होता है।

६—कान्ता—इस दृष्टिवाले का ज्ञान तारे के प्रकाश के स[illegible] होता है। इसलिये जिस तरह तारे का अभाव नहीं होता, [illegible] तरह इस दृष्टि वाले को भी ज्ञान का अभाव नहीं होता। [illegible] निरन्तर तत्व ज्ञान की विचारणा, संसार में रहते हुए भी उ[illegible] आसक्ति रहित, अर्हत प्रणित धर्म के विषय में निबिड़ राग और आत्मज्ञान होने से संसार से डरता रहता है।

७—प्रभा—इस दृष्टिवाले का ज्ञान सूर्य की प्रभा के स[illegible] होता है। जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार का नाश हो[illegible] उसी तरह इस दृष्टिवाले से अज्ञान रूप अंधकार का नाश

है। वह विशेषकर ध्यान में ही प्रवृत्त रहता है और बाह्य तथा अभ्यन्तर रोग रहित प्रवर ध्यान से उत्पन्न परमानन्द सुख का अनुभव करनेवाला होता है ।

८—परा—इस दृष्टिवाले का ज्ञान चन्द्रमा के समान निर्मल शांत प्रकाश के समान होता है। निरतिचार पद में प्रवर्तमान, आत्मवीर्योल्लास से अभ्यारूढ़, हरेक क्रिया आत्मगुण को पुष्ट करने वाली होती है। उसे ही करता है, और अनुक्रम से अपूर्व-करणादि गुणस्थान पर पहुँच कर अन्त में केवलज्ञान प्राप्त कर अनेक भव्य जीवों का उपकार करता है।

इस प्रकार केवली भगवान की देशना सुनकर देवपाल श्रावक व्रत अंगीकार कर अपने महल में आया। उसके बाद बड़े उत्साह पूर्वक एक अत्यन्त मनोहर देवताओं के भवन से भी अधिक शो-भायमान, जिसका ध्वजदंड और कलश बहुत ऊर्ध्व भाग में रहकर शोभा दे रहा है ऐसा जिन मंदिर उसने तैयार कराया। उसमें सुरधेनु और कल्पवृक्ष से भी अधिक सौख्यदाता ऐसे सुवर्णमय जिन बिम्ब की स्थापना की। महोत्सव पूर्वक केवली ने उसकी प्रतिष्ठा की। दूसरे भी अनेक जगह कैलाश समान देदीप्यमान चैत्य कराकर व प्रचुर द्रव्य व्यय कर, मन, वचन और काया से विधि पूर्वक प्रथम पद का आराधना निर्मल भाव से करने लगा। रत्न और माणिक्य के बहुमूल्य आभूषण कराकर विधि भक्ति से स्नात्रोत्सव कर अपना जन्म सफल करने लगा।

विश्वास नहीं हुआ। जिससे राजा ने उसे अयोग्य समझ कर छोड़ दिया और स्वयं रानी सहित राजमहल को लौट गया।

इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर रानी के देवसेन नामका पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ युवावस्था प्राप्त होने पर उसका सुन्दर राजकुमारी के साथ ब्याह कर दिया। इसके बाद पुत्र को राज्य देकर राजा और राणी ने चन्द्रप्रभु गुरू के पास उल्लासपूर्वक चारित्र अंगीकार किया राजा निरतिचार संयम आराधना व दुष्कर तप करता हुआ ग्यारह अंग व नवपूर्व का अध्ययन कर नित्य स्वाध्याय करता हुआ कर्मरज को दूर करने लगा। संयमाराधन करते हुए भी निरन्तर भाव युक्त अरिहँत पद की भक्ति भी करता था। इस प्रकर तीनों लोकमें सब शास्वत जिनेश्वरों को भावपूर्वक वंदना कर व उनके गुणगान कर अपने कर्ममल दूर करने लगा। इसके सिवाय जहां २ श्री जिनेश्वर के कल्याणक हुए वहां २ की यात्रा करता हुआ प्रथम पद की आराधना कर अंत समय में अनशन कर प्राणतकल्प में देव हुआ। मनोरमा भी निरतिचार संयम पाल कर कठिन तपस्या कर स्त्री वेद का उच्छेदकर उसी कल्पमें देवांगना हुई और उसके साथ मित्र रूप में रहने लगी राजा का जीव वहां से चवकर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद प्रप्त करेगा। रानी का जीव भी वहां से चवकर उन्हीं तीर्थंकर के गणधर होकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

—

दूसरी कथा

राजा हस्तिपाल

दूसरे सिद्ध पद की आराधन से तीर्थंकरहुये

इस भरतक्षेत्र में इन्द्रपुरी के समान ऐश्वर्यवाला साकेतपुर नाम का नगर था। वहां का राजा हस्तिपाल था। जो इन्द्र के समान तेजस्वी लक्ष्मीवान था जिसका यश सूर्य की किरणों की तरह दसों दिशाओं में फैला हुवा था। वह निष्कंटक होकर न्याययुक्त प्रजा का पालन करता हुआ राज्य करता था। उसके चैत्र नाम का बुद्धिमान मंत्री थो एक वार राज्य के लिये राजा को आज्ञा से चंपापुरी नगरी के राजा भीम के पास गया। वहां नगर की शोभा को देखता देखता वीतराग प्रभु श्री वासुपूज्य जिनेश्वर के मंदिर में गया। वहाँ भगवान की स्तुति वंदना कर हर्षपूर्वक बाहर आया। वहां मनोहर कामदेव के समान रूपवान धर्ममूर्ति धर्मघोष मुनि कोअपने शिष्यों सहित देख, प्रसन्न होकर विनय पूर्वक वंदना कर उनके सम्मुख बैठ गया। गुरू ने ज्ञानोपयोग से उसकी योग्यता जानकर संसार का नाश करनेवाली अमृतके समान देशना दी

हे भव्य जीवों! इस संसार रूपी अटवी में भ्रमण करते २ अमृत के तालाब के समान धर्म पूर्व पुण्य से ही प्राप्त होता है।

विश्वास नहीं हुआ। जिससे राजा ने उसे [illegible] कर छोड़ दिया और स्वयं रानी सहित राजमहल को लौट गया।

इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर रानी के देवसेन नामका पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ युवावस्था प्राप्त होने पर उसका सुन्दर राजकुमारी के साथ ब्याह कर दिया। इसके बाद पुत्र को राज्य देकर राजा और राणी ने चन्द्रप्रभु गुरू के पास उल्लासपूर्वक चारित्र अंगीकार किया राजा निरतिचार संयम आराधना व दुष्कर तप करता हुआ ग्यारह अंग व नवपूर्व का अध्ययन कर नित्य स्वाध्याय करता हुआ कर्मरज को दूर करने लगा। संयमाराधन करते हुए भी निरन्तर भाव युक्त अरिहँत पद की भक्ति भी करता था। इस प्रकर तीनों लोकमें सब शाश्वत जिनेश्वरों को भावपूर्वक वंदना कर व उनके गुणगान कर अपने कर्ममल दूर करने लगा। इसके सिवाय जहां २ श्री जिनेश्वर के कल्याणक हुए वहां २ की यात्रा करता हुआ प्रथम पद की आराधना कर अंत समय में अनशन कर प्राणतकल्प में देव हुआ। मनोरमा भी निरतिचार संयम पाल कर कठिन तपस्या कर स्त्री वेद का उच्छेदकर उसी कल्पमें देवांगना हुई और उसके साथ मित्र रूप में रहने लगी राजा का जीव वहां से चवकर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थङ्कर पद प्रप्त करेगा। रानी का जीव भी वहां से चवकर उन्हीं तीर्थङ्कर के गणधर होकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

—

दूसरी कथा

राजा हस्तिपाल

दूसरे सिद्ध पद की आराधन से तीर्थंकरहुये

इस भरतक्षेत्र में इन्द्रपुरी के समान ऐश्वर्यवाला साकेतपुर नाम का नगर था। वहां का राजा हस्तिपाल था। जो इन्द्र के समान तेजस्वी लक्ष्मीवान था जिसका यश सूर्य की किरणों की तरह दसों दिशाओं में फैला हुवा था। वह निष्कंटक होकर न्याययुक्त प्रजा का पालन करता हुआ राज्य करता था। उसके चैत्र नाम का बुद्धिमान मंत्री था एक बार राज्य के लिये राजा की आज्ञा से चंपापुरी नगरी के राजा भीम के पास गया। वहां नगर की शोभा को देखता देखता वीतराग प्रभु श्री वासुपूज्य जिनेश्वर के मंदिर में गया। वहाँ भगवान की स्तुति वंदना कर हर्षपूर्वक बाहर आया। वहां मनोहर कामदेव के समान रूपवान धर्ममूर्ति धर्मघोष मुनि कोअपने शिष्यों सहित देख, प्रसन्न होकर [illegible]नय पूर्वक वंदना कर उनके सम्मुख बैठ गया। गुरू ने [illegible]नोपयोग से उसकी योग्यता जानकर संसार का नाश करनेवाली [illegible]मृतके समान देशना दी

हे भव्य जीवों! इस संसार रूपी अटवी में भ्रमण करते २ [illegible]मृत के तालाब के समान धर्म पूर्व पुण्य से ही प्राप्त होता है।

सब जीवों पर दया करना यह सबसे उत्कृष्ट धर्म कहा है मनुष्य को अपने प्राण के सिवा अन्य कोई अधिक प्यारा नहीं है। जो एक जीव की रक्षा करता है वह त्रिभुवन की रक्षा करता है और जो एक जीव की हिंसा करता है वह त्रिभुवन की हिंसा करता है। ऐसा समझना चाहिये। जीव चौदह प्रकार के हैं—सूक्ष्म एकेन्द्रिय बादर एकेन्द्रिय बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय चौरिन्द्रिय संज्ञी पंचेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय। सात पर्याप्त और सात अपर्याप्त मिलकर जीव के चौदह भेद होते है ऐसा जिनेश्वर भगवान ने कहा है। इन सबकी धर्मात्मा पुरुष रक्षा करते है। अपनी आत्मा और दूसरों की आत्मा में जरा भी फर्क नहीं समझते है। आत्मवत् सर्व भूतेपु इस प्रकार सबको अपनी आत्मा के समान देखते हैं। दुसरे शास्त्रो में भी कहा है कि —

> यत्र जीवः शिवस्तत्र, न भेदः शिवजीवयो ।
> न हिंस्यात्सर्वभूतानि, शिवभक्तिसमुत्सुक ॥१॥

अर्थ—जहाँ जीव है वहाँ शिव है। शिव और जीव में भेद नहीं हैं। इसलिये शिव की भक्ति करनेवाले को सर्व जीवों की हिंसा नहीं करनी चाहिये।

इस प्रकार जीवो पर दया करने से आत्मा निर्मल होती है और धीरे २ वह आत्मा जन्म जरा मृत्युआदि क्लेशो से मुक्त होकर अनन्त ज्ञान, दर्शन चारित्र और वीर्य को धारण करने वाला शुद्ध चिदानन्दमय सर्वदा कर्मरहित होकर लोक के अग्र भाग वाले सिद्ध क्षेत्र में जहाँ सब सिद्ध भगवान रहते है वहाँ पहुँचता है

उन सिद्ध जीवो केसुख का वर्णन करोड़ो मुख
भी नहीं किया जा सकता है। सुर और मनुष्य सम्बन्धी
जो उत्तम प्रकार के सुख है उन सबको इकट्ठा किया जाय
भी उस सुख की तुलना नहीं हो सकती अर्थात, उन सब सुख
से भी मोक्ष का सुख अनंतानंतगुणा अधिक है। जिसने अमृ
रस का पान किया हो उसे अन्य रस कैसे अच्छे लग सकते
अर्थात नहीं लगते। जिसने मोक्ष के अद्वितीय के सुख
जान लिये है उसे मनुष्य सम्बन्धी पौद्गलिक सुख की इच्
किस तरह हो सकती है। सभी सिद्धात्मा अमूर्त होने से परस्
बाधा रहित मोक्ष स्थान में रहते है। सिद्ध के जीवों की उत्कृ
अवगाहना ३३३ धनुष से थोड़ी अधिक है। मध्यम अवगाह
तीन हाथ से थोड़ी कम होती है और जघन्य अवगाहना ए
हाथ और आठ अंगुल होती है।

जैसे अमृत के एक बिन्दु मात्र से तीव्र विष की व्याधि ना
होती है, वैसे सिद्ध भगवान् के ध्यान से जीवों के दुष्कृत्यों
परंपरा नाश होती हैं और तीनों लोकों को पूज्य ऐसी उत्कृ
पदवी तत्काल मिलती है।

इस प्रकार गुरू की देशना सुनकर मंत्री बोला—'हे प्रभु
सिद्ध की भक्ति से संसार का नाश करने वाले श्रावक के
मुझे दीजिये। गुरू ने योग्य जानकर उसे व्रत दिये व्रत लेकर गुरु
वंदना कर मंत्री राज्य का कार्य पूरा कर अपने नगर में आया।
राजा को प्रणाम कर योग्य स्थान पर बैठ गया। तब राजा

पूछा 'हे मंत्री ! तुमने चंपापुरी में जो कोई आश्चर्य देखा हो वह कहो

तब मंत्री ने कहा—'हे राजा ! उस नगरी के मंदिर देव भवन समान अतिशय मनोहर हैं जिसे देखकर मन को तृप्ति नहीं होती । जगह जगह पर दाता और भोक्ताओं के घर हैं । उस शहर के मध्य में तीनो लोक को आल्हाद पैदा करनेवाला अद्भुत शोभायमान श्री वासुपूज्य स्वामी का मंदिर है । उस मंदिर में सबके नेत्रो को मोहनेवाली, दिव्य आभूषणों से विभूषित वासुपूज्य स्वामी की मणिमय प्रतिमा है। मैंने मेरे पुण्योदय से उन जिनेश्वर की प्रतिमा के दर्शन कर अपने नेत्र सफल किये । भाव सहित भक्ति पूर्वक नमस्कार कर लौटते समय धर्मघोष मुनि मिले । उनको नमस्कार कर मैं बैठा । गुरुदेव ने उपकार दृष्टि से सिद्ध का स्वरूप बताया । मैंने भी उसी प्रकार अंगीकार किया । इस प्रकार मंत्री के मुख से बात सुनकर राजा मन में विचारने लगा कि – अहो ! वे उपकारी मुनिराज यहाँ कब पधारेंगे और कब उनके दर्शनकर मैं अपने मन का मनोरथ पूर्ण करूंगा । ' इतने में धर्मघोष मुनि शिष्यो सहित उपवन में आ पहुँचे । राजा को उनके आने की सूचना मिलते ही प्रसन्न होकर मंत्री सहित गुरुदेव की वंदना करने गया । वहाँ जाकर बिधि पूर्वक गुरूदेव को वंदना कर यथोचित स्थान पर बैठ गया । इतने में गुरु महाराज सिद्ध का स्वरुप बताने लगे :–

'हे भव्यजीवों ! धर्म दो प्रकार का है एक श्रमण धर्म दूसरा श्रावक धर्म। उस धर्म का सम्यक्त्व सहित आचरण करने से सिद्ध पद प्राप्त होता है। गुरु महाराज की देशना सुनकर राजा बोला — हे करुणा समुद्र ! जो दृष्टि से अगोचर है, जिसकी रुपरेखा व काया अगोचर हैं, ऐसे सिद्ध भगवान की सेवा भक्ति किस प्रकार की जाय ? वह आप कृपा कर हमको बताइए। गुरू महाराज ने कहा 'हे राजन् ! जो सिद्ध स्थान में रहनेवाले निरंजन–निराकार, निःकषायी, जितदेह, शुद्धात्मा, सिद्ध स्वरूप का ध्यान करता है और उनकी मूर्त्ति की द्रव्य भाव से पूजा करता है वह प्राणी घातिया कर्मों का क्षय कर अनंतानंत सुख देनेवाली तीन लोककी सम्पदा प्राप्त करता है। इस प्रकार स्वरुप सुन राजा विचारने लगा —अहो ! वह पुरुष धन्य है जो भव भ्रमण को दूर करने वाले जिन धर्म को अराधना करता है। मैं भी उसी को ग्रहण करुं। इस विचार से सिद्धपद के अराधना का व्रत ग्रहण कर अपने घर आया। पीछे निरंतर बहुत भावपूर्वक स्थिर चित्त से "णमो सिद्धाणं" पद से सिद्ध परमात्मा का ध्यान करता हुआ मंत्री सहित सम्मेत शिखर, शत्रुंजय' आदि सिद्धों के पवित्र स्थानो की यात्रा कर अपनी आत्मा को निर्मल करने लगा। अनुक्रम से निर्मल ध्यान से सिद्ध पद की अराधना कर मोक्ष सुख के निधान स्वरुप तीर्थंकर नाम कर्म बांधा। इसप्रकार दीर्घकाल तक राज्य ऋद्धि और सिद्ध पद की अराधना कर मंत्री सहित गुरुके पास चारित्र ग्रहण किया।

[illegible]
[illegible] और [illegible]
करता हुआ [illegible] मुनि महाराज की आज्ञा
लेकर सम्मेत शिखर की यात्रा के लिये गया। मार्ग में उन्होंने यह
अभिग्रह किया कि जब तक सिद्ध परमात्मा की मूर्ति के दर्शन न
होंगे तब तक आहार नहीं लूंगा। ऐसा दृढ़ अभिग्रह देख
इन्द्र महाराज ने मुनि महाराज की सभा में प्रशंसा की। उसके
वचन पर विश्वास न कर एक अग्नि कुमार देव उस मुनि की
परीक्षा के लिये वहाँ आकर अनेक प्रकार के क्लिष्ट उपसर्ग करने
लगा। तीव्र भूख और प्यास की ऐसी वेदना पैदा की कि सामान्य
मनुष्य तो क्षण भर में प्राण रहित होजाये। ऐसी वेदनाको माह
तकसहन करने से मुनि की काया अत्यन्त क्षीण होगई फिर भी
उन्हें जरा भी क्रोध नहीं आया। तब देवता ने प्रगट होकर सारी
व्यथा दुर करदी और मुनि के चरणो में नमस्कार कर कहने लगा।
महाभाग्य! हे करुणा सागर! समता सिंधु! मेरे सारेअपराधक्षमा
करो। इन्द्र महाराज ने सभा में आपके अभिग्रह की प्रशंसा की
उसपर मुझे विश्वास नहीं होने से मैने आपके साथ यह कार्य
किया है। अत: आप क्षमा करे। ऐसा कह देव वापिस देवलोक
में चला गया। राजर्षि मुनि ने दो मास तक उपसर्ग सहन कर
सम्मेत शिखर पर पहुँच कर सम्पूर्ण सिद्ध प्रतिमाओ को बन्दन कर
पीछे पारणा किया। इस प्रकार निरतिचार चारित्र पालकर अन्त
समय में अनशन कर मंत्री तथा राजर्षि दोनो अच्युत

कल्प में देवहुए। वहां से चवकर राजा महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पदवी पाकर मोक्ष जायेगे और मंत्री वहां से चवकर उनही तीर्थंकर के गणधर होकर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेगे।

तीसरी कथा

श्री शेठ जिनदत्त और हरिप्रभा जो तीसरे प्रवचन पद के आराधन सेतीर्थंकर हुवे

भरतक्षेत्र में वसंतपुर नामका एक बहुत ही रमणीक नगर था। वहां समकित धारी जिनदास नाम का एक व्यापारी रहता था। उसके शीलवान पतिवृता जिनदासी स्त्री तथा रूपवान, विनयी और विवेकी जिनदत्त नामका पुत्र था। उसकी चन्द्रातप विद्याधर के साथ मित्रता थी। उस विद्याधर ने जिनदत्त को बहुरुपिणी विद्या सिखा दी थी। एक दिन वे दोनो मित्र उद्यान में गये वहां मनोहर नाटक कराकर आनन्द से बैठे थे, इतने में एक पुरुष हाथ में चित्र लेकर जिनदत्त को प्रणाम कर, चित्र जिनदत्त को देकर एक तरफ खड़ा हो गया। जिनदत्त चित्र को देख प्रफुल्लित हो कहने लगा—हे चित्रकार अप्सरा के रुप को भी मात करने वाली यह युवती कौन है। चित्रकार—हेभाग्यशाली चंपापुरी में परोपकारी व धनाढय धनावाह सेठ रहता है। उसके घर में दो अमूल्य वस्तु हैं। एक बहुमूल्य मुक्ताफल का एकावली हार और

दूसरी रुपवती और गुणवती कन्या हरिप्रभा हैं। उस कन्या के रूप गुण और सौन्दर्य का मैं क्या वर्णन करुँ वह साक्षात रति और सरस्वती के समान चन्द्रवदनी सुभलोचनी हस्ति के सामान गतिवाली व अप्सरा के रुप को भी पराजय करनेवाली है। उसी कन्या का यह चित्र हैं। मैंने देवकृपा से अपनी आजीविका के लिये बनाया हैं।

चित्रकार के मुख से यह सुनकर जिनदत्त ने एक लाख मुल्य वाली रत्नों से जड़ी हुई करधनी देकर वह चित्र खरीद लिया। चित्र की सुन्दरता देख दिग्मुढ़ हो घर आया परन्तु उसका मन किसी काम में नहीं लगा। यहां तक कि खाना पीना सोना बैठना, चलनाफिरना सब छोड़ दिया और रात दिन उसी चित्र पर ध्यान लगाकर बैठा रहता। इस बात का पता उसके पिता जिनदास को लगा, तो उसने आकर कहा – बेटा। किसी धुर्त के कपट जाल में फसकर एक लाख रुपये पर पानी फेरनेवालाव काम धन्धो को छुड़ाने वाला यह तूने चित्र क्यों लिया ? द्रव्योपार्जन में कितना परिश्रम करना पड़ता है। उसका तुझे क्या पता ? कठिन परिश्रम से एकत्र किया हुआ धन यदि इस प्रकारव्यय कर देगें तो थोड़े समय में दरिद्री हो जायेगें। परन्तु तुझे विना परिश्रम के पिता से मिले हुए धन को क्या परवाह ? इस तरह उलाहना देकर सेठ अपने काम पर चला गया।

उपरोक्त चुभनेवाले वचन सुन जिनदत्त चमका और मन में विचारने लगा – ओ हो पिता को मुझ से अधिक प्रेम धन से है इस विचार से जिनदत्त की आंखों से आंसू की धारा

निकलने लगी। थोड़ी देर इसी अवस्था में रहा और फिर सोचने लगा। अरे इसमें पिता का क्या दोष सारा संसार स्वार्थी है। माता भी यदि पुत्र कमाता है तो प्रीति करती है। स्त्री भी यदि पति नाना प्रकार के आभूषण लाकर देता है तो प्रेम करती है मित्र भी यदि स्वार्थ नहीं निकलता है तो उसे छोड़ देता है और राजा भी धनवान की ही इज्जत करता है। वास्तव में सब जगह स्वार्थ का ही स्नेह है जहां तक स्वार्थ होता है वहां तक ही स्नेह है इसलिये इस में पिता का क्या दोष है! पिता के द्रव्य की एक कोड़ी भी काम में नहीं लेनी चाहिए। विदेश जाकर धन पैदाकर के ही पिता के घर में प्रवेश करूंगा। ऐसा निश्चय कर उसी दिन रात्रि को जब सब सो रहे थे व सब जगह शान्ति का साम्राज्य था तब जिनदत्त बिना किसी को कहे घर से निकल कर चला गया। चलते चलते चंपापुरी में धनावाह सार्थवाह के घर पहुंचा। सार्थवाह ने रात को स्वप्न में कल्पवृक्ष देखा था इसलिये आगन्तुक को देखते ही अत्यन्त हर्ष पूर्वक आदर से जगह दी। कहा है कि

सज्जन आव्या पाहुणा, आपे चार रत्न।
पाणी, वाणी, बेसणुं, आदरसेंतीअन्न ॥

खरे खर। भाग्यशाली पुरुष जहां जहां जाता है वहां वहां उसका आदर सत्कार होता है। कहा है कि—

पान पदारथ नर सुगुण, वण तोल्यां वेचाय।
जिम जिम चंपे भुंमडी त्युं त्युं मूल मोंघेरा थाय ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

गुणी जन जहाँ जाता है वहाँ अपने गुणों से सबको अपना ही परिवार कर सबका प्रिय बन जाता है। जिनदत्त ने भी अपने गुणों से सार्थवाह के सारे कुटुम्ब को धर्म का उपदेश कर धर्म पर श्रद्धावान् बनाया। इस तरह कुछ दिन व्यतीत होने पर सार्थवाह ने जिनदत्त के गुणों से मुग्ध हो पूछा—"हे महाभाग! तुमको यहाँ रहते कुछ दिन व्यतीत हो गये हैं परन्तु हम सबको तुम्हारे गांव, नाम और कुल का पता नहीं है। तथा आप किस कारण से देशाटन कर रहे हैं? यदि आपको कहने में कोई आपत्ति नहीं हो तो हमें बता कर कृतार्थ करो।

जिनदत्त—श्रेष्ठीवर्य मुझे कहने में कोई आपत्ति नहीं है। ऐसा कह उन्होंने अपना सारा वृतान्त बताया। सार्थवाह ने उसका वृतान्त सुन हृदय में प्रसन्न हो विचारने लगा—"वास्तव में यह उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ है और गुणवान है। इसलिये मेरी पुत्री हरि-प्रभा के लिये यह योग्यवर है" ऐसा विचार कर बड़े उत्साहपूर्वक जिनदत्त के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर कन्यादान में अपार धन दिया। वास्तव में पुण्यशाली पुरुष जहाँ जाता है वहां वह सुखी ही होता है। कहा है कि—

सर्वत्र वायसाः कृष्णाः सर्वत्र हरिताः शुकाः ।
सर्वत्र दुखीनां दुःखं, सर्वत्र सुखीनां सुखं ॥१॥

अर्थ—जिस तरह कौए सब जगह काले और तोते सब जगह हरे होते हैं । इसी तरह सुखियों को सब जगह सुख और दुखियों को सब जगह दुख मिलता है ।

इस तरह जिनदत्त पूर्व पुण्योदय से सुख पूर्वक श्वसुर के यहाँ कुछ समय रहकर सबकी आज्ञा लेकर अपने नगर की ओर चलने को तैयार हुआ, तब सेठ ने दहेज में अपना अमूल्य एकावली हार तथा अपार धन दिया । साथ में नौकर रथ, पालकी आदि भी देकर हर्षपूर्वक विदा किया ।
अनेक नौकरों के साथ चलते चलते मार्ग में एक सरोवर के पास मुकाम कर सब विश्राम करने लगे । वहाँ से थोड़ा दूर वृक्षों की कुञ्ज में विद्याधर मुनि को कायोत्सर्ग में स्थित देख दोनों स्त्री पुरुष चारण मुनि के पास आकर विनय पूर्वक वंदना कर उनके सामने बैठ गए । इतने में मुनि ने कायोत्सर्ग पूरा कर धर्म लाभ कहा और उनको योग्य समझ धर्मदेशना देने लगे ।

'अहो भव्य जनों, इस अनादि और दुःख से भरपूर संसार समुद्र में डूबते प्राणी को धर्म के सिवाय किसी का सहारा नहीं है । धर्म से सब प्रकार का सुख, वैभव और ऐश्वर्य प्राप्त होता है । उत्तम कुल में जन्म होता है और मोक्ष भी प्राप्त होता है । धर्म कई प्रकार से होता है—जैसे १—सब जीवों पर दया करने से, २—ज्ञान व क्रिया से, ३—ज्ञान, दर्शन और चारित्र से, ४—दान, शील तप और भावना से, ५—पंच महाव्रत से, ६—षट् आवश्यक से,

७–सप्तनय से, ८–अष्ट प्रवचन से, ९–नव तत्व से और १०- क्षमादि दश विधि यति धर्म से, इस तरह धर्म के भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। उनकी आराधना करने से प्राणी सुर नर सम्बन्धी अनेक प्रकार के सुखों को प्राप्त कर अन्त में कर्म मल रहित हो निरंजन निराकार हो परमानन्द को प्राप्त करता है।

यह देशना सुन विनय पूर्वकप्रणाम कर जिनदत्त बोला– हे भगवन्! ऐसा उत्तम प्रकार का धर्म किसने बताया वह कृपा कर कहो? मुनि –हे महाभाग्य। यह धर्म प्राणी मात्र का उपकार करने वाले श्री जिनेश्वर भगवान ने बतलाया है। जिनदत्त – हे भगवन्! ऐसे उत्कृष्टा पद का लाभ किस पुण्य के उदय से प्राप्त किया जा सकता है? मुनि – सौभाग्यशाली त्रैलोक्यवंद्या तीर्थंकर पद की प्राप्ति के लिये अरिहंतादिक बीस स्थानककी निज शक्तिनुसार आराधना करने और उसमे भी तीसरे पद –अर्थात् श्री संघ की भक्ति भावपूर्वक करने सेउत्कृष्ट पद प्राप्त होता है। इसलिये कहा है कि –

गुणानामिह सर्वेषां रत्नानामिव रोहणः।
श्रीमान्. श्रमणसंघोयं आधारः परमो भुवि॥

अर्थ – जैसे इस पृथ्वी पर सब रत्नों का आधार रुप रोहणाचल है वैसे सर्व गुणों का आधार रूप श्री श्रमण संघ है।

इसे तीर्थंकर भगवान भी धर्मोपदेश समय "णमो तित्थस" कहकर नमस्कार करते है। श्री संघ की भक्ति परम पद को देनेवाली है। श्री संघ की भक्ति करनेवाले विशाख नामके सेठ को उसी भव में किसी सम्यग्दृष्टि देव ने प्रसन्न होकर चिन्तामणि

दान दिया था। बाद में उस सेठ ने श्रीसंघ की अतिशय गौरव पूर्वक भक्ति कर और सम्यक्त्व शुद्ध कर तीर्थङ्कर पद प्राप्त किया। इसलिये हे सौभाग्यशाली ! सब क्लेशों को दूर करने के लिये उत्साहपूर्वक श्री संघ की अत्यंत भाव से भक्ति कर।

इस प्रकार श्री संघ की भक्ति का महत्त्व सुन भावपूर्वक तीसरे पद की आराधना का नियम गुरु से ग्रहण कर पुनः विनय पूर्वक वंदना की। पीछे परिवार सहित अपने नगर में गया। स्वजन सम्बन्धी उसको आगमन आदि को देख मिलने आये। इसके बाद निरंतर भावपूर्वक तपस्वी ग्लान, वृद्ध आदि सुपात्रों को वस्त्र, पात्र, आहार, औषधि आदि देने लगा। इसी तरह निरन्तर जिनेश्वर भगवान की सनात्र कर सर्वों का नाश करनेवाली गुरु देशना सुनकर सम्यक्त्व में निश्चला चित्त वाला हो चतुर्विध संघ की यथाशक्ति भक्ति करने लगा। कहा है कि जो भी श्री संघ की भक्ति कर अपना द्रव्य सुपात्रों में व्यय करता है। वह सर्व ऋद्धि सम्पत्तियों से अपना गृह भरता है और जो कुपात्रों में अपना धन खर्च करता है वह जिस प्रकार रोगी को कुपथ्य देने के परिणाम में दुःखी होता है। उसी तरह कुपात्र में व्यय किया गया द्रव्य कष्ट को देने वाला होता है। कुछ समय बीतने पर उस नगर के राजा को बहुमूल्य भेंट की। उसे पाकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और बड़े आदर से जिनदत्त को बुलाकर राज्य सभा में उसे नगर सेठ की पदवी प्रदान की।

बिना मेरी प्रार्थना को अस्वीकार न कर एकावली हार मुझे देंगे — ऐसी आशा है ।

इस प्रकार के करुणामय वचन सुनकर जिनदत्त ने कहा — हे स्वामी ! यह सब द्रव्य स्वधर्मियों के लिये ही है । मैं तो सिर्फ उनका खर्च करने वाला हूँ । ऐसा कह तुरन्त अत्यन्त मूल्यवान एकावली हार निकाल कर उसके सुपुर्द किया । उसकी ऐसी उदारता देख देव प्रसन्न हो अपने असली रूप में प्रगट हो उसके सिर पर फूलों की वृष्टि कर उसकी स्तुति करने लगा । — हे सेठ ! आपको धन्य है, आपने श्रावक धर्म का यथार्थ पालन किया है तथा प्रवचन की और श्री संघकी भक्ति कर जिन शासन की प्रभावना की और अपने कुल को उज्वल किया है इस प्रकार स्तुति कर चिन्तामणि रत्न देकर देव अपने स्थान को लौट गया । चिन्तामणि रत्न के प्रभाव से जिनदत्त श्री संघ के इच्छित कार्य पूरे करने लगा । फिर चार ज्ञान को जानने वाले रत्नप्रभु गुरू के पास अपनी भव स्थिति पूछी । तब गुरू ने कहा, "हे देवानुप्रिय ! तू यहाँ से मृत्यु पाकर पहले देवलोक में देवता होगा, वहाँ से चवकर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद प्राप्त कर मुक्ति को प्राप्त करेगा । इस प्रकार गुरू के वचन सुनकर अत्यन्त हर्ष पूर्वक सात क्षेत्रों में खूब द्रव्य खर्च करता हुआ शुभ भावना पूर्वक अपनी स्त्री और दूसरे बहुत श्रावकों सहित गुरू महाराज के पास से चारित्र लिया । मुनि अवस्था में भी उल्लास पूर्वक प्रवचन की भक्ति करता मुनियों को गोचरी

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

चतुर्थ कथा

राजा पुरुषोत्तम

जो चतुर्थ आचार्यपद की भक्ति से तीर्थङ्कर हुए

इस भरतक्षेत्र में पद्मावती नाम की नगरी थी। वहाँ इन्द्र के समान ऐश्वर्यवान् पुरुषोत्तम राजा निष्कंटक हो प्रजा का पालन करते हुए सुख पूर्वक राज्य करते थे। उसके बुद्धिमान तत्वातत्व का जाननेवाला, सम्यक्त्व आदि गुणों से विभूषित, अर्हंत धर्म को माननेवाला सुमति नाम का मंत्री था। एक दिन राजा सर्व सामन्तों सेठों और मंत्रीओ सहित सभा में बैठे हुए थे कि इतने में एक कपटी, रौद्र नाम का कपाली, योगी राजा को आशीर्वाद देकर सभा में आकर बैठ गया। राजा ने आदर पूर्वक कुशल क्षेम पूछ आने का कारण पूछा। योगी बोला—हे नरेन्द्र तेरे प्रताप से तेरी सम्पूर्ण प्रजा सुख से रहती है तो फिर मुझ योगी की कुशल क्षेम का क्या पूछना? अर्थात मैं आनन्द पूर्वक हूँ। परन्तु

आज छः माह से एक विद्या सिद्ध कर रहा हूँ किन्तु वह उत्तर साधक बिना सिद्ध नहीं होती। इसलिये हे परोपकारी पुरुषोत्तम नरेन्द्र मेरे पर अनुग्रह कर मेरा उत्तर साधक बन विद्या सिद्ध करने में सहायता कर मेरे श्रम को सफल कर, यही मेरी प्रार्थना है।

योगी की बात सुन राजा ने कहा—योगीन्द्र! मैं खुशी से आपका उत्तर साधक बनूगा, आप सर्व होम की सामग्री तैयार करो मैं आपके साथ हूँ। राजा की यह बात सुनकर सम्यक त्व का जाननेवाला मंत्री कहने लगा—हे नृपति! वीतराग धर्म को जाननेवाले को मिथ्यात्वी का साथ नहीं देना चाहिये क्योंकि शंका कांक्षा, विचिकित्सा पाखण्डी की प्रशंसा और उनका साथ ये समकित के पांच अतिचार हैं। इससे समकित मलीन होता है और समय पर कष्ट होने की संभावना है। इसलिये जिनेश्वर ने इन पाँच अतिचार का त्याग करने को कहा है।

राजा—मंत्रीश्वर! आपका कहना सत्य है, परन्तु इस क्षण भंगुर देह से यदि किसी का उपकार नहीं हुआ तो यह जीवन किस काम का? क्योंकि अन्त में तो देह भस्मीभूत होने वाला है। मेरे कुछ भी हो, उसको मुझे कोई चिन्ता नहीं। यदि मेरे कारण इसका कार्य सिद्ध हो जायगा तो मुझे प्रसन्नता ही होगी।

इस प्रकार मंत्री के मना करने पर भी योगी के साथ तलवार लेकर राजा सूर्यास्त होने पर भयंकर वन में योगी के स्थान पर पहुँचा तब योगी ने कहा हे राजा एक मनुष्य के शव

नगर को रवाना हुआ। कुछ ही दिनो में वे पद्मावती नगरी के उधान में आकर ठहरे। वहां से संध्या को चुपचाप स्त्री वेष छोड़कर पुरुषोत्तम राजा महल में गया। राजा के आगमन की सूचना मिलने पर नगर के सेठ, सामंत, मंत्री वगैरह नमस्कार करने आये। पीछे राजा ने सारा वृतान्त मंत्री को बतलाया और शुभ मुहुर्त देख उत्तम लग्न में राजकुमारी पद्मश्री के साथ बडे ठाटबाट के साथ शादी की।

कुछ समय आनन्द सहित विषय सुख भोगते हुए रानी ने सिंह स्वप्न सूचित गर्भ धारण किया। नौ मास पूरे होने पर पुत्र हुआ। राजा ने बडे हर्ष पूर्वक जन्मोत्सव किया। पुत्र का नाम पुरुषसिंह रखा। बडे लाड़ प्यार से पालित विद्याभ्यास कर सब शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर यौवन अवस्था में पहुचा। इसलिये राजा ने उत्साह से आठ राजकुमारियों के साथ राजकुमार की शादी कर दी। इस प्रकार राजा अपने आपको सुखी मानने लगा परन्तु सब की स्थिती कभी एक समान नहीं रहता है। अब धीरे २ राजा का भाग्य चक्र उलटा चलने लगा। पूर्व कर्मवश रानी के शरीर में दाहज्वर की महावेदना उत्पन्न हुई। उसी वेदना से रानी की मृत्यु हो गई। रानी पर अधिक स्नेह होने के कारण राजा खाना पीना, राजकाज छोड़कर रातदिन रोने लगा। उस समय उस नगरी के उधान में चार ज्ञान को धारण करने वाले परमोपकारी श्रीदेव मुनिश्वर पधारे। उनको नमस्कार करने के लिये नगर के सब लोग जानेलगे। राजा भी मंत्री सहित आकर गुरु वंदन कर

नय पूर्वक उचित स्थान पर बैठ गया। उस समय करुणासागर निराज धर्मदेशना देने लगे।

"हे भव्यजीवों! मनुष्य जन्म, आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल और र्मश्रवण का योग मिलने पर भी जो प्राणी अनन्त सुख देनेवाले र्म में चित नहीं लगाता वह बारबार दुःख से भरे चौरासी लाख ोनियों में भ्रमण करता है। संसार में एक भी ऐसी योनि नहीं जिसमें यह जीव अनन्त बार जन्मा व मरा न हो। यह जीव कर्म श मनुष्य जन्म प्राप्त कर पौद्गलिक सुख की इच्छा में आसक्त ाकर मनुष्य जन्म ऐसे ही खो देता है। इस जीव ने पौद्गलिक ुख को अनन्त बार भोगा है फिर भी इसको तृप्ति नहीं हुई। ास्तविकता में इस पौद्गलिक सुख को सच्चा सुख नहीं कह ाकते क्योंकि जिस तरह किंपाक का फल खाने में मीठा होता है रन्तु अन्त में दारुण दुःख देनेवाला होता है। ऐसे दुखगर्भित ुख में गुणीजन क्यों आसक्त होता है? संसारिक सुख क्षणिक ौर असार है इसलिये उसका त्याग कर अनन्त सुख को देने ाले जैन धर्म में रुचि रखना चाहिये। धर्म दो प्रकार का है— क पंच महाव्रत रूप श्रमण धर्म जिससे मोक्ष सुख प्राप्त होता है। ूसरा सम्यक्त्व मूल श्रावक के बारह व्रत रूप धर्म है जिससे उत्कृष्ट बारहवे देवलोक का सुख प्राप्त होता है। इस तरह अनेक भवोपार्जित कर्म का नाश कर अक्षयसुख को देनेवाले धर्म का चिंतन करो।"

कीर्तन करते हुए उत्कृष्ट पुन्योपार्जन कर तीर्थंकर नाम कर्म का बंध किया।

एक दिन देवसभा में इन्द्र महाराज ने पुरुषोत्तम मुनि की प्रशंसा कर कहा कि—वर्तमान संसार में भरत क्षेत्र में मुनि गुणों में विभूषित पुरुषोत्तम राजर्षि के समान गुरु भक्ति करने वाला दूसरा नहीं है। इस प्रकार मुनि की प्रशंसा सुन कोई इर्षालु मिथ्या दृष्टि देव उन मुनि की परीक्षा करने के लिये मुनि का रूप धारण कर पुरुषोत्तम मुनि के पास आकर उनके अनेकों दोष बताने लगा और कटु वचन से वाक्य प्रहार कर भर्त्सना करने लगा। फिर भी समता सिंधु राजर्षि मुनि जरा भी खेद नहीं करते हुए अपनी निंदा सुनते हुए गुरुभक्ति भाव से जरा भी विचलित नहीं हुए। इस प्रकार दृढ़ चित्तवाले मुनि को देख देव प्रगट होकर मुनि की तीन प्रदक्षिणा नमस्कार कर अपने अपराध की क्षमा माँग कर देवलोक में चला गया। राजर्षि मुनि अभिग्रह का पालन करते हुए अन्त मे एक मास का अनशन कर अच्युत कल्प में महा समृद्धिवाले देव हुए। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

एक दिन राजा राज्य सभा में बैठा हुआ था। उस समय इन्द्र शर्मा नाम का इन्द्रजालिया मनोहर देव समान रूपधारण कर साथ मे एक अनुपम स्वरूपवान लावण्यमयं नवयौवना युवती को लेकर सभा में आया और प्रणाम क[र] खड़ा रहा। उसको राजा ने आदर पूर्वक कहा—हे वी[र] पुरुष! तू कौन है? तेरे साथ यह सुन्दरी कौन है यहाँ आने का क्या प्रयोजन है?

इन्द्रजालिया सिर झुका कर कहने लगा—हे राजन मै मणि प्रभ विद्याधर हूँ और यह मेरे प्राणों से अधिक प्रिय मे[री] पत्नि है। यह एक दिन अपनी सखियों के साथ क्रीडा करने [illegible] रही थी उस समय मेरे शत्रु वज्रदाह विद्याधर ने इसका ह[रण] किया। मुझे खबर होते ही उसके साथ युद्ध कर अपनी स्त्री लेकर यहाँ आया हूं। परन्तु वह दुष्ट फिर अत्यन्त क्रोधित हो [illegible] मारने के लिये आरहा है। इस लिए मै अपनी स्त्री को आप [illegible] शरण में रखने आया हूँ। लोगों के मुंह से सुना है आप पर न[illegible] [illegible] है इस लिए आप के पास छोड़ने आया हूँ। मैं जब [illegible] पीछा नहीं आऊँ तब तक इसको [illegible] [illegible] है। मैं थोड़ी ही देर में आपकी कृपा [illegible] आऊँगा। ऐसा कह [illegible] में वह [illegible] हो गया और सब सभासद [illegible] [illegible]

थोड़ी देर में आकाश से एकदम दो कटे हुए पैर राज
सभा में आकर गिरे। इसके बाद दो हाथ कटे हुए गिरे। इस
तरह शरीर के सब अवयव कटे हुए गिरपड़े। यह देखकर
सब चकित हो गए। उन अवयवों को पहचान कर विद्याधर
की स्त्री जोर जोर से रूदन करती हुई बोली—हाय! हाय
नाथ! मुझे अभागी के लिये आपने निर्दयी शत्रु से
लड़कर प्राण त्याग किये। अरे नाथ! दुष्ट के साथ लड़ने से
तो मुझ हत—भगिनी का ही नाश होने देते तो अच्छा होता।
हे प्राणनाथ! अब में आपके बिना जीकर क्या करू! मैं भी
आपके पीछे आती हूँ। इस तरह रोती हुई राजा से
कहने लगी—महाराज। मैं भी पति के साथ सती होना
चाहती हूँ। क्योंकि कुलीन और सती स्त्री का बाद में
जीना व्यर्थ है। इसलिये मेरे पति के अंग के साथ मेरा भी
अग्नि संस्कार करो जिससे मैं जल्दी अपने पति से जाकर मिलूँ।
राजा आदि सभासदों ने उसे बहुत समझाया परन्तु उसने
अपनी हठ नहीं छोड़ी। इस लिये राजा ने सबकी सलाह से
अवयवों के साथ स्त्री का अग्नि संस्कार कर दिया।
फिर शोक पूर्ण हृदय से सभा में आकर बैठा था कि इतने
में आकाश से प्रफुल्लित होता हुआ पूर्वोक्त विद्याधर
(इन्द्रजालिया) राज्य सभा में आकर राजा को नमस्कार
कर कहने लगा। हे सत्यमूर्ति नराधीश! मैं आपके

प्रताप से मेरे शत्रु का नाश कर निर्विघ्नता से आपके पास आया हूँ। अब आप मेरी प्राण प्रिया सुलोचना को वापिस मुझे दे दीजिये। इन्द्र जालिया को अचानक आया देख व उसके पूर्वोक्त वचन सुन राजा स्तब्ध हो कुछ भी उत्तर दिये बिना भूमि की तरफ दृष्टि कर बैठा रहा। राजा को इस प्रकार बैठे देखकर पुनः इन्द्र जालिया बोला—हे नरपति! आप बिना कुछ कहे उदास होकर क्यों बैठे हो? क्या मेरी सुन्दर स्त्री को देखकर आपके मन में पाप पैदा होगया है?

ऐसे कटु वचन सुनकर राजा मस्तक ऊँचा कर बोला—हे विद्याधर! आप ऐसा न कहें। आपकी स्त्री मेरी बहिन के समान थी वह आपके कटे हुए अवयवों को देखकर उसके साथ जलकर भस्म हो गई है।

राजा की बात सुन कर इन्द्रजाली पुनः कहने लगा-हे नृपति! सत्पुरुष प्राणान्त कष्ट होने पर भी सत्य से विचलित नहीं होते। यह पृथ्वी सत्यवान पुरुषों के सत्य पर ही टिकी हुई है। लोग आपको सत्यवादी कहते हैं। क्या आप अपने सत्य से भ्रष्ट हो गये हैं? अरे स्त्री को देखकर कौन चलाय मान नहीं होता? राजा आपकी बुद्धि भ्रष्ट होगई है।

इन्द्रजालिया के तीक्ष्ण तीर समान वाक्य सुनकर राजा का दिमाग घूमने लगा और मस्तक पर हाथ लगा नेत्र बन्द

कर चिन्ता करने लगा। इस तरह राजा को शोक पूर्ण देखकर जली हुई स्त्री अचानक प्रगट होकर अपने पति के पास खड़ी हो गई। उसे अचानक प्रगट हुई देकर सब विस्मित होगये। तब राजा ने इन्द्रजालिया से कहा कि आपने यह सब हमको दुःखी करने के लिये क्यों किया। तब उसने जवाब दिया कि हे राजा तेरे को प्रतिबोध देने के लिये इस इन्द्रजाल की रचना की थी। जैसे यह सब इन्द्रजाल असत्य है वैसे हो ये सारे पदार्थ जो दिखाई देते हैं वे सब क्षण भंगुर और नाशवान हैं। यह विशाल राज्य, अनुपम सौन्दर्य वाली मनोहर स्त्रियाँ सब नाशवान है। सब लोगों का त्याग ही सुख को देनेवाला है। यदि हम इनको नहीं छोड़ते तो ये किसी समय हमको छोड़कर दुःख देंगे। इसलिये इन पर मोह करना व्यर्थ है। इंद्रजालिया के ऐसे वचन सुन राजा को ज्ञान हुआ और उसे एक करोड़ सोना मोहर देकर बिदा किया।

दूसरे दिन उसी नगरी के उद्यान में आचार्य देवप्रभु बहुत मुनियों के साथ पधारे। नगर में खबर होते ही सब पुरवासी राजा वगैरह गुरु को वन्दना करने गये। उन में आकर राजा विनय सहित तीन प्रदक्षिणा दे गुरु को वन्दना कर उचित स्थान पर बैठ गया। पीछे गुरू महाराज ने धर्म देशना शुरू की।

'हे भव्य आत्माओं! जो कोई प्राणी लज्जा, भय, तर्क वितर्क, मात्सर्य स्नेह, लोभ, हठ, अभिमान, विनय, श्रृंगार,

कीर्ति, दुःख कौतुक, आश्चर्य, व्यवहार भाव, कुलाचार, और वैराग्य से धर्म का सेवन करता है, उसे अपार फल की प्राप्ति होती है। यदि धर्म श्रवण करा हो, देखा हो, किया हो, कराया हो और अनुमोदन किया हो तो अपार सुख प्राप्त करता है। इसलिये हे भव्य प्राणियों धर्म में रुचि रखो।

गुरु की देशना सुन राजा को वैराग्य भावना पैदा हुई और दोनों हाथ जोड़ मस्तक झुका गुरू से बोला—हे करुणा निधान मुझे यह, मनोहर स्वरुपावन स्त्रियाँ और प्रताप किस पुण्य के प्रभाव से प्राप्त हुए है कृपा कर बतलाइये। गुरू ने कहा—हे राजा तू पूर्व भव में नन्दनपुर नगर में शङ्ख नामक सेठ के यहाँ नन्दन नाम का नौकर था। एक दिन तू मनोहर खिला हुआ कमल लेकर सेठ के घर जारहा था कि इतने में किन्हीं चार कुमारियों ने उस कमल को देखकर कहा कि ऐसा सुन्दर फूल तो वास्तव में जिनेश्वर की पूजा के योग्य है। कन्याओं के ऐसे वचन सुन प्रसन्न होता हुआ कन्याओं से बोला कि जो तुम कहती हो वह सत्य है। यह कमल जिनेश्वर की पूजा के योग्य ही है। ऐसा कह स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहन अत्यन्त भाव पूर्वक श्री देवाधि देव परमात्मा की पूजा कर वह कमल का फूल चढ़ाया। इसीलिये कहा है कि—

श्रेयस्तनोति दुरितानि निराकरोति,
लक्ष्मी करोति शुभ संचय मातनोति।

पूज्यत्वं मानयति कर्मरिपून्निहन्ति,
पूजा जिनस्य रचिता जिनभावसारं ॥

अर्थ—अपनी उत्कृष्ट भावना से की गई श्री जिनेश्वर की पूजा कल्याण करनेवाली है, पापों को दूर करनेवाली है, लक्ष्मी की वृद्धि करनेवाली है, पुण्य संचय में वृद्धि करती है, पूज्यता बढ़ाती है और कर्म रूपी शत्रुओं का नाश करती है। इस तरह भाव पूर्वक भगवान की पूजा अनेक उत्तम फल को देने वाली है। उन चारों कन्याओं ने भी जिनेश्वर भगवान की पूजा का अनुमोदन किया। उस पुण्य के प्रभाव से तू यहाँ राजा हुआ और वे सारी कुमारियाँ तेरी रानियाँ हुई।

गुरु से पूर्व भव सुनकर राजा को जातिस्मरण ज्ञानहुआ और वैराग्य भावना लेकर राजमहल में आकर अपने पुत्र पद्मशेखर को राजगद्दी दे नगर के सारे जिन चैत्यों में अट्टाई महोत्सव कर चारों स्त्रियों सहित गुरू से चारित्र अङ्गीकार किया। धीरे धीरे राजर्षि मुनि ने विधि सहित गुरू से ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। एक दिन गुरू के मुंह से वृद्धों की भक्ति का महत्व सुना कि जो कोई वय, पर्याय और सूत्रार्थ से वृद्ध हो तथा तपस्वी हो ऐसे मुनि की निष्कपट और निरभिमान होकर जो भक्ति करता है वह अपनी आत्मा को निर्मल कर उच्च गोत्र का बन्धन कर तीर्थङ्कर पद को प्राप्त करता है। इस प्रकार गुरू से स्थविर की भक्ति का महत्व सुनकर राजर्षि मुनि ने यह अभिग्रह किया कि जब तक मैं जीऊँगा तब तक

[illegible]

करते हुए आदर सत्कार करने लगे ।

एक दिन देव सभा में इन्द्र महाराज ने राजर्षि मुनि [illegible] प्रशंसा सुन देवांगना सम्यग् दृष्टि देव भी प्रसन्न होकर इ[illegible] का अनुमोद करने लगा । परन्तु दूसरे देवांगना मिथ्या [illegible] देव को यह बात अच्छी नहीं लगी । इस पर वहाँ से दे[illegible] मनुष्य रूप धारण कर जहाँ राजर्षि मुनि थे वहाँ आये । [illegible] आकर उनमें से एक कहने लगा कि जगत में दुष्कर तप [illegible] वाले, ब्रह्मचारी तथा निर्मल जल में स्नान कर [illegible] में रहने वाले ममता रहित योगियों को देखकर हृदय प्रफु[illegible] होता है और इन शौचाचार रहित बाह्य और अभ्यन्तर से म[illegible] जैन मुनि को देखते ही अप्रीति उत्पन्न होती है । यह सुन कर [illegible] देव हंसकर बोला हे भाई ! तू मूर्ख मालूम होता है क[illegible] क्षमादिक गुणों से युक्त जैन मुनि को सम्पूर्ण रीति से [illegible] बिना अज्ञान कष्ट करनेवाले तपस्वियों को तू प्र[illegible] करता है, यह तेरी मूर्खता है । इस एक की निन्दा और [illegible] की स्तुति सुनकर भी राजर्षि मुनि दोनों पर रागद्वेष [illegible] समभाव से रहे—पीछे वे दोनों देव दूसरा रूप धारण कर शिव पंथी तपस्वी के पास आये । उनमें से एक बोला यह तपस्वी पशु की तरह भक्ष्याभक्ष्य का ख्याल नहीं रखता और

स्त्री रखता है इसलिये इसका तप मिथ्या है । उसके ऐसे वचन सुन तपस्वी क्रोधित हो उसे मारने को दौड़ा तब रत्नांगद देव हेमांगद से कहने लगा कि हे मित्र जैन और शैवई मुनि में कितना भेद है यह तुमने देखा । इतने पर भी मिथ्या-दृष्टि देव के हृदय में श्रद्धा नहीं हुई । इसलिये पुनः उन राजर्षि मुनि पर देवमाया से बहुत से उपसर्ग किये फिर भी करुणासागर मुनि अपने लिए हुए अभिग्रह से चलायमान नहीं हुए । तब वे दोनों देव प्रत्यक्ष प्रगट हो मुनि को नमस्कार कर अपने अपराध की क्षमा याचना कर अपने अपने स्थान पर गये । पद्मोत्तर मुनि ने वृद्ध साधुओं की भाव पूर्वक भक्ति करने से तीर्थङ्कर नाम कर्म का बँध किया । वहाँ से काल धर्म प्राप्त कर महा शुक्र देवलोक में देवता हुए । वहाँ से चलकर महा विदेह क्षेत्र में तीर्थङ्कर पद प्राप्त कर मोक्ष जावेंगे ।

छट्ठी कथा

राजा महेन्द्रपाल जो छट्ठे बहुश्रुत पद की आराधना से तीर्थङ्कर हुए

भरतक्षेत्र में सोपारकपट्टण नगर था, जहाँ सर्व कलाओं में कुशल महेन्द्रपाल राजा राज्य करता था । [illegible]

अभाव में मिथ्यात्वयों के बताए हुए रास्ते पर चलता था। वह यह मानता था कि यह आत्मा पंचभूत तत्वों से बनी है और पंचभूत का नाश होने पर आत्मा का भी नाश हो जाता है। कहा है किः—

विना गुरुभ्यो गुणनीरधिभ्यो, जानातिधर्मं न विचक्षणोऽपि।
आकर्णदीर्घोज्वलोचनोऽपि'दीपं विना पश्यति नोंधकारे॥

अर्थः—गुण के समुद्र गुरू बिना समझदार मनुष्य भी धर्म को नहीं जानता। जैसे कान तक लम्बी आँख वाला मनुष्य भी दीपक बिना अंधेरे में देख नहीं सकता।

राजा के एक बुद्धिमान मंत्री था। उस मंत्री के जिन तत्व को जाननेवाला श्रुतशील भाई था। राजा उसे बड़ा प्यार करता था।

एक बार अतिशय स्वरूपवान मातँग की स्त्री को पंचम नाद युक्त गान करती हुई देखकर राजा उस पर मोहित हो गया। राजा के भाव को जानकर श्रुतशील कहने लगा कि महाराज अपयश को देनेवाली पर नारी का जो संग करता है वह नीच गति को प्राप्त कर महा दुःख उठाता है। जैसे सुन्दर किंपाक फल को खाकर मनुष्य मरता है वैसे ही सुन्दर परस्त्रियों का संग करने से अनेक बार मर कर महान दुःख भोगने पड़ते हैं। यदि राजा ही अनीति के रास्ते पर चले तो दूसरों को कैसे रोका जा सकता है। इसलिये हे राजा! दोनों लोकों में दुःख देने वाली पर स्त्री के संग का विचार छोड़ दो। इस तरह

बहुत समझाने पर भी राजा ने अपना हठ नहीं छोड़ा। इसलिये मंत्री ने राजा का हित चिंतन कर राज्य की अधिष्ठायिका देवी का स्मरण किया जिससे देवी प्रगट हुई। मंत्री ने उसे सारा हाल बताया। तब देवी ने कहा कि जब यह अपने पाप का पश्चताप करे उस समय मेरा स्मरण करना। मैं उसे शाँत कर दूगी। ऐसा कह राजा के शरीर में व्याधि प्रगट कर देवी अदृश्य हो गई। पीछे व्याधि से व्याकुल हुआ राजा विलाप कर सोचने लगा कि वास्तव में मुझे मेरे दुष्कृत्य ही पीड़ा दे रहे है। मन से किये पाप से ही इतना कष्ट हो गया है तो जो पाप सेवन करता है उसका तो क्या हाल होता होगा। इस प्रकार मन में पश्चाताप कर फिर कभी पाप कार्य नहीं करने की प्रतिज्ञा कर व्याधि की शाँति के लिये प्रार्थना करने लगा। मंत्री ने सोचा कि अब राजा पूरी तरह पछता रहा है तो उसने देवी का स्मरण किया और देवी ने व्याधि को शाँत कर दी और राजा स्वस्थ हो गया। पीछे राजा ने मंत्री से पूछा कि मुझे जो मानसिक पाप लगा ने उसकी शुद्धि कैसे हो मंत्री ने कहा पंडितों को बुलाकर पूछो ताकि वे पाप निवारण करने का उपाय बतावेंगे। राजा ने मंत्री के कहने से दूसरे दिन सवेरे पंडितो को बुलाकर पाप से मुक्त होने का उपाय पूछा। पंडितों ने अलग २ रीतियां बताई। किसी ने कहा गंगाजल पीने से पाप दूर होता है। किसी ने कहा अड़सठ

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
से पाप दूर होता है। किसी ने कहा दान कर देने से पुराण की
कथा सुनने से पाप का नाश होता है। किसी ने कहा ब्राह्मणों
को दान देने से किये पापों का नाश जाता है। इस प्रकार
पंडितों ने पाप निवारण के उपाय बताये परन्तु राजा को उनमें से
कोई भी पसन्द नहीं आया। उस समय नगर के बाहर
उद्यान में श्रीयेश मुनिश्वर पधारे। राजा उनकी वंदना करने
परिवार सहित गया। गुरु को विनय पूर्वक वन्दना कर दोनों
हाथ जोड़ बोला—हे करुणानिधि! मन के पाप की शुद्धि किस
प्रकार की जाय, इसका उपाय बताओ।

गुरु ने कहा शुद्धि दो प्रकार की है, बाह्य और आभ्यन्तर। जलादिक से शरीर की बाह्य शुद्धि होती है और ज्ञान, ध्यान तथा तप से आभ्यन्तर की शुद्धि होती है। जिसका चित्त काम वश स्त्री के मोह में फँसा हुवा हो ऐसे मनुष्यों की जलादिक से कभी भी शुद्धि नहीं हो सकती। अन्तर की शुद्धि तो ज्ञान और क्रिया से ही हो सकती है ऐसा जिनेश्वर ने कहा है। कहा भी है कि—

आलोचया निंदनगर्हणाभिः,सम्यक् क्रिया बोध तपोभिरुग्रैः।
तत्पापकर्मा स्त्रमतस्त्रिधापि, स्माहुर्विशुद्धिं खलु दुष्कृतानां॥

अर्थ—मन, वचन और काया इन तीनों से पाप करनेवाले मनुष्य के दुष्कर्मों की शुद्धि आलोचना, निंदा और गर्हा तीन

ऐसी वैराग्य पूर्ण गुरु देशना श्रवण कर राजा ने जयन्त कुमार को राजसिंहासन पर बैठा मंत्री सहित गुरु के पास से चारित्र ग्रहण किया। धीरे २ गुरु के पास रहकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। एक दिन गुरुमुख से बीस स्थानक की आराधना सम्बन्धी देशना श्रवण करते हुए ऐसा सुना कि बीस स्थानकों में से एक भी स्थानक की सम्यक् प्रकार से आराधना करने से तीर्थंकर पदवी मिलती है। वह गुरु वचन सुनकर राजर्षि मुनि ने अभिग्रह लिया कि जहाँ तक जीऊँगा वहाँ तक बहुश्रुत की सेवा करूँगा। ऐसा अभिग्रह लेकर बहुश्रुत मुनि की औषध भैषज आदि से वैयावच्च करते हुए अभिग्रह का दृढ़ता से पालन करने लगा।

देवसभा में इन्द्र महाराज ने उन मुनि की प्रशंसा की। उस पर शंकित हो धनददेव जहाँ मुनि थे उस नगर में आ सेठ बनकर रहने लगा। उस समय वे राजर्षि किसी बीमार साधु के लिये कोलापाक की तलाश में फिरते कि सेठ के घर आ धर्मलाभ देकर खड़े हुए। मुनि को देख कर सेठ खड़ा होकर प्रणाम कर मीठे वचनों से बोला कि यह मेरा धन्यभाग्य है कि आपने पधार कर मेरा घर पवित्र किया है पूज्य! कहिये आपको क्या चाहिये?

मुनि ने कहा—हे महाभाग मुझे कोलापाक की जरूरत है।

सेठ ने कहा—महाराज मेरे घर में कोलापाक है। आप ठहरिये मै अभी लाता हूँ। ऐसा कह अन्दर से कोलापाक लाकर मुनि को देने लगा। मुनि ने उसे अनिमेष नेत्रवाला देख सोचा कि यह तो कोई मायावी देव है और देवपिंड मुनि ग्रहण करते नहीं। ऐसा सोच पाक लिए बिना वहाँ से दूसरी जगह चले गए। इससे वह देव कोपित हो जहाँ २ मुनि जाते वहाँ २ पाक को अशुद्ध कर देता। फिर भी मुनि को खेद नहीं हुआ। बहुत घर फिरते २ सूरसार्थवाह के यहाँ मुनि गये। वहाँ उसे शुद्ध पाक मिला। वहाँ से पाक लेकर मुनि अपने स्थान पर गये। इस तरह मुनि को अपने अभिग्रह में निश्चल देख देव ने प्रगट हो मुनि की स्तवना कर सूर सार्थवाह के घर रत्नों की वृष्टि कर अपने स्थान पर गया। बहुश्रुत की भाव पूर्वक सम्यक् प्रकार से सेवा करने से मुनि ने तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। वहाँ से काल धर्म प्राप्ति कर नवमें देवलोक में देवता हुए। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद प्राप्तकर मोक्ष प्राप्त करेंगे। श्रुतशील मुनि का जीव उन्ही तीर्थंकर का गणधर होकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

इस प्रकार महेन्द्रपाल नृपति का चरित्र श्रवण कर हे भव्यजीवो तुम भी बहुश्रुत की भक्ति करने के लिये प्रयत्न

—

⟹⟹

राजकन्या के आग्रह से कृत्रिम कन्या वहाँ आनन्द पूर्वक विविध प्रकार से विनोद करती हुई रहने लगी। इस तरह दोनों का मन एक हो गया।

एक दिन कृत्रिम कन्या ने राजकुमारी से कहा कि हे सखी तू अब यौवनावस्था में पहुँच गई है इसलिये यदि तुझे तेरे रुप गुण समान पति मिल जाय तो अच्छा है।

राजकुमारी ने कहा–हे सखी सब को अच्छे वर की इच्छा होती है। कोई बुरे को नहीं चाहता। परन्तु इसमें अपनी इच्छानुसार होना कठिन है क्योंकि यह सब अपने २ शुभाशुभ कर्म के अधीन है कृत्रिम कन्या ने कहा कि हे सखी तेरा कहा सत्य है परन्तु तेरे रूप गुण के योग्य एक कुलवान पुरुष है। यदि तुझे पसन्द हो तो बताऊं।

राजकुमारी ने कहा यहाँ कैसे बतायेगी ?

कृत्रिम कन्या ने कहा– अरे यहाँ ही बताऊँगी। देख यह रहा। ऐसा कह अपना असली रूप प्रगट किया। यह देख राजकुमारी आश्चर्य चकित हो विचारने लगी कि यह क्या कोई देवमाया है या इन्द्रजाल है। राजकन्या को भय में पड़ी देख वीरभद्र बोला हे नृप कुमारी ! आप किस विचार में हो ? क्या यह पुरुष तुमको पसन्द है ?

राजकुमारी लज्जित हो सिर नीचा कर धैर्य पूर्वक बोली कि हे कुमार कृपा कर अपनी सच्ची पहिचान बताओ

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] एक दिन वह एकान्त में बैठ विचारने लगा कि—

उत्तमाः स्वगुणैः ख्याता, मध्यमास्तु पितुर्गुणैः।
अधमा मातुलैः ख्याता, श्वशुरैश्चाधमाधमाः ॥१॥

अर्थः— अपने गुणों से जो विख्यात है वह उत्तम, पिता के गुणों से जो प्रसिद्ध है वह मध्यम, मामा के गुणों से जो जाना जाता है वह अधम और जो श्वसुर के कारण ख्याति पाता है वह अधमाधम है।

ऐसा विचार कर राजा की व शँख सेठ की आज्ञा ले अपने देश जाने की तैयारी की। शुभ मुहूर्त व अच्छे शकुन देख बहुतसे मनुष्यों के साथ नाव में बैठा। पीछे नाव समुद्र में चलने लगी। कुछ दिनों बाद समुद्र बीच पहुँची। इतने मे दुर्दैववश दसों दिशाओं में प्रचंड आँधी आई आकाश मेघों से आच्छादित हो गर्जन करने लगा, बिजली चमकने लगी और समुद्र हिलोरे लेने लगा। इससे नाव डाँवाडोल होने लगी। नाव के मनुष्य व्याकुल हो इष्टदेव का स्मरण करने लगे। प्रचण्ड तूफान के कारण अन्त में नाव के टुकड़े २ हो गये और

सब मनुष्य समुद्र में गिर गये। सत्वकर्म के कारण राजपुत्री अनंगसुन्दरी के हाथ मे लकड़ी का तख्ता आया। उसके आधार से तैरती २ तीन दिन में समुद्र के किनारे जा पहुँची वहाँ एक तापस दया कर उसे अपने आश्रम में ले गया और पुत्री की तरह रखने लगा। अनंग सुन्दरी की सुन्दरता देखकर तापस विचारने लगा कि ब्रह्मचारी को स्त्री संग लाभदायक नहीं है। इसलिए कहा है कि

मदिराया गुणाज्येष्ठा, लोकद्वय विरोधिनी॥
कुरुते दृष्ट मात्रापि, महिला महिलं जगत् ॥१॥

अर्थः—स्त्री मदिरा से भी ज्यादा गुण करनेवाली तथा इस लोक और परलोक को बिगाड़ने वाली है एवम् देखने मात्र से जगत को पागल कर देती है। अर्थात् मदिरा पीने के बाद मनुष्य मस्त होता है परन्तु दोनों लोक को बिगाड़ने वाली स्त्री तो मदिरा से भी अधिक मादक गुणवाली है कि जिसे देखते ही जगत पागल हो जाता है।

जिस तरह आग के पास रहने से लाख एक क्षण में नाश हो जाती है उसी तरह समीप रहने वाले ब्रह्मचारी का शील भी थोड़ी देर में नष्ट हो जाता है। ऐसा विचारकर वह तापस अनंग सुन्दरी से कहने लगा कि हे पुत्री मैं तुझे पास के पद्मिनी खंड नाम के नगर के पास छोड़ आता हूँ। वहाँ से तू तेरा उचित स्थान ढूंढ लेना। तेरे पुन्य से तुझे वहाँ अच्छा स्थान ही मिलेगा।

बैठकर सागर पार के लिये जाना हुआ। दुर्योग से नाव टूट गई और सब समुद्र में गिर पड़े। इतना कह चुप होगया। इतने में राजपुत्री गान्धर्वसुन्दरी बोली कि हे कथाकार जल्दी बताओ पीछे कुमार का क्या हुआ। इस तरह दूसरी स्त्री को बोलती देख वामन ने सभासदों से कहा कि देखो दूसरी स्त्री भी बोल गई। अब बाकी बात कल बताऊँगा।

तीसरे दिन पुनः सब उपाश्रय में इकट्ठे हुए। वामन ने कहना शुरू किया कि नाव टूट जाने पर वीरभद्र के हाथ एक लकड़ी का तख्ता लगा। उसके सहारे सात दिन में वह समुद्र के किनारे पहुँचा। वहाँ से रत्नवल्लभ विद्याधर नगर में लेगया और अपनी पुत्री रत्नप्रभा का विवाह उसके साथ कर दिया और दो विद्या उसे सिखाकर विद्याधर बनाया। एक दिन अपनी स्त्री रत्नप्रभा को लेकर वीरभद्र इस नगर में आया और उसे किसी जगह छोड़ कहीं चला गया। इतना कह वह चुप होकर बैठा रहा। इतने में रत्नप्रभा अधीर होकर पूछने लगी कि हे वामन जल्दी बताओ पीछे क्या हुवा और वे कहाँ गये और तुझे यह सारा हाल कैसे मालूम हुवा। वामन बोला कि मैं यह हाल अपने ज्ञान से जानता हूँ। उस ज्ञान से स्वर्ग, पाताल और मनुष्य लोक की सब बातें जान सकता हूँ।

रत्नप्रभा ने कहा कि यदि तू ज्ञानी है तो कृपा कर हमारे पति को बता, तेरा कल्याण होगा।

वामन बोला कि मेरी शक्ति से उसे अभी हाजिर करता हूँ। अभी यहाँ एक कपड़े की कुटी बना कर उसमें जाप करने के लिये एक आसन रक्खो और फिर देखना एक क्षण में क्या होता है!

पीछे वामन के कहे अनुसार कपड़े की एक कुटि बनाई और उसमें आसन रखा। सब लोगों को आश्चर्य में डालने के लिये वह जाप करने के बहाने अन्दर जा अपना असली रूप प्रकट कर तुरन्त बाहर आया। उसे देख सब आश्चर्य करने लगे। प्रियदर्शना के माता पिता को खबर मिलते ही वे हर्षित होकर आये व बड़े स्नेह पूर्वक मिले। इसके बाद वीरभद्र तीनों स्त्रियों सहित वहीं रहने लगा।

कुछ समय बाद नगर के उद्यान में त्रैलोक्यपति अठारहवें तीर्थंकर श्री अरहनाथ प्रभु पधारे। देवों ने समवसरण की रचना की। उसमें बारह पर्षदाएँ भगवान की देशना सुनने के लिये योग्य स्थान पर बैठीं। इनमें वीरभद्र भी अपनी स्त्रियों और सास श्वसुर के साथ आकर विनय पूर्वक प्रदक्षिणा दे उचित स्थान पर बैठ गया। भगवान ने सर्वभाषानुगामी वाणी से अमृतधारा के समान धर्म देशना दी। भगवान की देशना सुन कुछ हलु कर्मी जीव सर्व विरति हुए और कुछ देश विरति हुए। देशना पूर्ण होने पर भगवान के चरणों में नमस्कार कर सागरदत्त सेठ बोला हे करुणा निधान! लोकालोक प्रकाशक, अनन्त ज्ञान को धारण करनेवाले! मिथ्यात्व रूप

नि आये, वे भूखे होंगे और नदी में बाढ़ आने से मैं पुण्यहीन हां नहीं जा सकता। पुण्य के योग से ही छत्तीस गुणों से शोभित, दुष्कर तप करनेवाले नवकल्पी विहार करने वाले, और धर्म देशना देनेवाले गुरू का संयोग मिलता है।

इस प्रकार मुनि शुभ ध्यान पूर्वक भावना कर रहे थे कि तने में वह देव वहाँ प्रगट हो नमस्कार कर कहने लगा क मुनि आपको धन्य है, तपस्वी साधुओं की अनन्य और नेश्चल भक्ति देख आपकी परीक्षा करने के लिये नदी में बाढ़ लाकर अपराध किया उसके लिये क्षमा करेंगे। ऐसा कह नदी के प्रवाह को दूर कर गुरू के पास आकर पूछने लगा कि हे भो इन मुनि को ऐसी भावना से क्या फल मिलेगा। गुरू ने कहा इस भावना से यह मुनि आगामी काल में तीर्थंकर होंगे। इसलिये कहा है कि:-

मंत्रे तीर्थे गुरौ देवे, स्वाध्याये भेषजे तथा।
यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी ॥१॥

अर्थः- मंत्र, तीर्थ, गुरू देव, स्वाध्याय तथा औषध के बारे में जैसी जिसकी भावना होती है उसे वैसी ही सिद्धि होती है।

गुरू से यह सुन देव प्रसन्न हो देवलोक को चला गया। पीछे वीरभद्र मुनि ने आकर गुरुको आदरपूर्वक पारणा कराया। इस तरह निरन्तर तपस्वियों की भक्ति कर वहाँ से काल धर्म पा बारहवें अच्युत कल्प में महा समृद्धिवान देव हुए। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद प्राप्त कर अनेक जीवों का उपकार कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

एक दिन गुरु के मुँह से सुना कि जो विषय सुखों को त्याग करनेवाले तथा दुष्कर तपस्या करनेवाले तपस्वियों को भावपूर्वक भक्ति करता है उन्हें तीर्थंकर पद प्राप्त होता है।

इस प्रकार तपस्वियों को भक्ति का महत्त्व सुन वीरभद्र मुनि ने अभिग्रह लिया कि आज से मैं निरन्तर तपस्वियों की भक्ति करुँगा। इस प्रकार वह औषध भैषज्यादि से निरन्तर तपस्वियों की दृढ़ता पूर्वक भक्ति करने लगा।

एक समय गुरु के साथ विहार करते वे शालीग्राम में आये। वहाँ कोई देवता वीरभद्र मुनि की परीक्षा करने के लिये एक मास के उपवासी साधु का रुप बनाकर आया और पारणा करने की इच्छा प्रकट की। उसे तपस्वी समझ कर आसन दिया और गुरु के पास बिठाकर वीरभद्र मुनि उसके पारणे के लिये नदी को पार कर नगर में गोचरी लेने गये। गोचरी लेकर वापिस आये क्या देखते हैं कि नदी में प्रबल बाढ़ आई है। जल प्रवाह को देख मुनि स्थिर हो किनारे खड़े रहे। इतने में लोगों ने कहा महाराज इस नदी का जल प्रवाह अभी एकदम कम नहीं होगा इसलिये आप कुछ देर किसी के घर में रहकर आहार करो। जल प्रवाह कम होने पर विहार करना।

लोगों के वचन सुन वीरभद्र मुनि मन में विचार करने लगे कि मासोपवासी मुनि और गुरू को आहार कराये बिना मैं कैसे आहार कर सकता हूँ। बड़े भाग्य से जो तपस्वी

मुनि आये, वे भूखे होंगे और नदी में बाढ़ आने से मैं पुण्यहीन वहाँ नहीं जा सकता। पुण्य के योग से ही छत्तीस गुणों से सुशोभित, दुष्कर तप करनेवाले नवकल्पी विहार करने वाले, और धर्म देशना देनेवाले गुरू का संयोग मिलता है।

इस प्रकार मुनि शुभ ध्यान पूर्वक भावना कर रहे थे कि इतने में वह देव वहाँ प्रगट हो नमस्कार कर कहने लगा कि मुनि आपको धन्य है, तपस्वी साधुओं की अनन्य और निश्चल भक्ति देख आपकी परीक्षा करने के लिये नदी में बाढ़ लाकर अपराध किया उसके लिये क्षमा करेंगे। ऐसा कह नदी के प्रवाह को दूर कर गुरू के पास आकर पूछने लगा कि हे प्रभो इन मुनि को ऐसी भावना से क्या फल मिलेगा। गुरू ने कहा इस भावना से यह मुनि आगामी काल में तीर्थंकर होंगे। इसलिये कहा है कि:-

मंत्रे तीर्थे गुरौ देवे, स्वाध्याये भेषजे तथा।
यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी ॥१॥

अर्थ:- मंत्र, तीर्थ, गुरू देव, स्वाध्याय तथा औषध के बारे में जैसी जिसकी भावना होती है उसे वैसी ही सिद्धि होती है।

गुरू से यह सुन देव प्रसन्न हो देवलोक को चला गया। पीछे वीरभद्र मुनि ने आकर गुरुको आदरपूर्वक पारणा कराया। इस तरह निरन्तर तपस्वियों की भक्ति कर वहाँ से काल धर्म पा बारहवें अच्युत कल्प में महा समृद्धिवान देव हुए। वहाँ से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद प्राप्त कर अनेक जीवों का उपकार कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

आठवीं कथा

श्री राजा जयानन्द जी

जो आठवें ज्ञान पद के आराधन से तीर्थङ्कर हुवे.

कौशाम्बी नगरी में महाप्रतापी राजा जयानन्द राज्य करता था। वह एक दिन रानियों के साथ उद्यान में क्रीड़ा करने गया। नाना प्रकार की क्रीड़ा करने के बाद में राजा हाथी पर सवार हो वापिस नगर लौट रहा था तब रास्ते में उसने सुवर्ण कमल पर विराजमान सुरा-सुरसेवित केवलज्ञान भास्कर यशोदेव मुनि महाराज को धर्मदेशना देते देखा। वह हाथी से उतर कर विनय-पूर्वक वन्दना कर गुरू सन्मुख अमृतमय देशना सुनने को बैठ गया। गुरू ने निम्न प्रकार कहना शुरू किया—

'हे भव्यजनो! दुःख से प्राप्त होने वाले इस मनुष्य जन्म, आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल और निरोगी काया को पाकर ज्ञान की तरफ ध्यान लगाओ। ज्ञान से निरतिचार संयम पाला जा सकता है, आत्मा निरन्तर पवित्र होती है। इससे अस्थिरपन स्थिर होता है और अनन्त अव्याबाध मोक्ष प्राप्त होता है। जो ज्ञानवान होता है

उसका इस लोक में भी आदर होता है और अज्ञानी तो आँखों के होते हुए भी अन्धा ही होता है क्योंकि वह करने और नहीं करने योग्य काम को नहीं जानने से और कर्मों में लिप्त होने से चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता है जिसमे जन्म मरण के भयंकर दुःख भोगता है। ऐसा समझ हे भव्यात्माओ तुम ज्ञान की आराधना करने का प्रयत्न करो। यह सुनकर राजा खड़ा हो हाथ जोड़ बोला 'हे प्रभु मैं ज्ञानी हूँ या अज्ञानी ?

गुरू ने कहा—नरेन्द्र तू तो क्या प्रायः देव भी अज्ञानी होते हैं क्योंकि जो मृत्यु पाए हुवों को, मृत्यु पाने वालों को और बुढ़ापा एवम् व्याधित से दुःखी देह को देख दुःखी नहीं होते उनको ज्ञानी कैसे कहा जाय ? विषय कषाय वगैरह अगर ज्ञानी में हो तो फिर ज्ञानी और अज्ञानी में क्या फर्क ?

इस प्रकार गुरू के वचन सुन राजा वैराग्य भावना लेकर राजमहल में आया। राजकुमार जयवर्म को राज्या रूढ़ कर राजा ने उत्साहपूर्वक गुरू के पास चारित्र लिया। पीछे निरतिचार से चारित्र का पालन, कठिन तपश्चर्या व पारणे पर निरस भोजन, गुरू सेवा आदि करते हुए धीरे २ बार अङ्ग का अर्थ सहित अध्ययन किया।

एक बार मोहनीय कर्म के उदय से मुनि शातागारव में लुब्ध हुए जिससे चारित्र में शिथिलता और अस्थिरता

आठवीं कथा

श्री राजा जयन्त देव जो आठवें ज्ञान पद के आराधन तीर्थङ्कर हुवे.

कौशाम्बी नगरी में महाप्रतापी राजा जयन्तदेव करता था। वह एक दिन रानियों के साथ उ क्रीड़ा करने गया। नाना प्रकार की क्रीड़ा करने के में राजा हाथी पर सवार हो वापिस नगर लौट था तब रास्ते में उसने सुवर्ण कमल पर विराजमान सुरसेवित केवलज्ञान भास्कर यशोदेव मुनि महाराज धर्मदेशना देते देखा। वह हाथी से उतर कर वि पूर्वक वन्दना कर गुरू सन्मुख अमृतमय देशना सु को बैठ गया। गुरू ने निम्न प्रकार कहना शुरू किया—

'हे भव्यजनो! दुःख से प्राप्त होने वाले इस मनु जन्म, आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल और निरोगी काया पाकर ज्ञान की तरफ ध्यान लगाओ। ज्ञान से निरतिचा संयम पाला जा सकता है, आत्मा निरन्तर पवित्र होत है। इससे अस्थिरपन स्थिर होता है और अनन्त अव्याबाध मोक्ष प्राप्त होता है। जो ज्ञानवान होता है

बैठ, क्षमा रूपी तलवार ग्रहण कर, कर्मरूपी शत्रु के साथ युद्ध करने लगा। ऐसी नोकोत्तर सेना और आयुध सहित युद्ध करते हुए देखमोह राजा की प्रबल सेना दसों दिशाओं में भाग गई और जयन्त मुनिराज की विजय हुई। इस समय मुनिराज की परीक्षा करने इन्द्र महाराज दिव्याभरण से विभूषित, विविध प्रकार के हाव भाव और विलासयुक्त अनुपम सौन्दर्य शालिनी सुन्दरी का रूप धारण कर मुनि को विचलित करने आया और उन्मादपूर्ण कामोद्दीपक वचन कहने लगा 'हे प्रभु! मैं आपके स्वरूप से मोहित हूँ मेरी इच्छा पूर्ण करने आपके पास आई हूँ इसलिये इस यौवन का स्वाद ले मानव जीवन सफल करो। मैं पूरी आशा से आपके पास आई हूँ। आशा है आप मेरी आशा भंग न कर, संसार सुख भोग कर मुझे संतुष्ट करेंगे। ऐसे अनेक प्रकार के अनुकूल कामोद्दीपक वचन कहे फिर भी धैर्यवान् जयंतमुनि मेरू पर्वत की तरह अचल रहे। इस तरह के उपसर्ग से भी वे श्रुत उपयोग से चलायमान नहीं हुए। तब इन्द्र ने एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाया और हाथ में लकड़ी पकड़ धीरे २ मुनि के पास आ नमस्कार कर पूछा हे ऋषीवर मेरा आयुष्य अब कितना बाकी है बताओ। मुनि ने कहा हे सुरेश आपका आयुष्य दो सागरोपम में थोड़ा सा कम है। इस प्रकार श्रुत उपयोग से उन्होंने इन्द्र को पहचान लिया।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

यह खबर मिलने से राजा तथा [illegible] गुरु की वंदना करने आया। विनय भक्ति सहित गुरु को वंदना कर उचित स्थान पर बैठा। इतने में गुरु महाराज ने संसाररूपी व्याधि का नाश करने वाली धर्म देशना शुरू की।

हे भव्यजनो ! इस अनादि अनन्त संसार की चारों गति में यह जीव अनन्त बार जन्म व मर कर अनन्त दुःख भोग चुका है। नरक गति में अतिशय आरम्भ और परिग्रह के वश से छेदन, भेदन, ताड़न वगैरह असह्य दुःख सहने पड़ते हैं। तिर्यन्च गति में परवशता से क्षुधा, तृषा आदि अनेक प्रकार के दुःखों का अनुभव करना पड़ता है। यह मनुष्य जन्म बड़ी मुश्किल से प्राप्त होता है। यदि यह प्राप्त भी हो जाय तो उत्तम कुल और जिनोदित धर्म मिलना कठिन है। कदाचित् पूर्व पुण्य से यह प्राप्त भी हो जाय तो आगम श्रवण और उस पर श्रद्धा होना कठिन है, क्योंकि धर्मरूपी धन को चुराने वाले तेरह काठिये निशाचर की तरह निरन्तर प्राणियों के धर्मरूपी धन को लूट लेते हैं। इसलिये अधर्मी प्राणी संसार

भ्रमणकर अनेक प्रकार की व्यथा का अनुभव करता है। शुभ कर्मवशात् यह जीव मनुष्य और देवगति के उत्तम प्रकार के सुखों को प्राप्त कर उसी में फंस सच्चा सुख मान लेता है यह उसकी अज्ञानता है क्योंकि ऐसे पौद्‌गलिक सुख तो यह जीव अनन्तबार भोग चुका है, फिर भी उसे तृप्ति नहीं हुई क्योंकि कल्पित सुख में वास्तविक सुख हो भी नहीं सकता और वास्तविक सुख बिना आत्मा की तृप्ति हो नहीं सकती। ऐसी तृप्ति तो सब आशा तृष्णा का त्याग समतारस में लीन होने पर ही होती है। इसलिये समस्त ममता का त्याग कर समभाव में चित्त लगाओ।

इस प्रकार गुरू की देशना सुन वैराग्य पूर्ण हृदय से राजा ने हाथ जोड़कर पूछा—हे प्रभु! मैं इस संसार से भयभीत हो आपकी शरण ले व्रत ग्रहण करना चाहता हूँ। गुरु ने कहा जैसी तुम्हारी इच्छा। गुरू को वंदन कर राजमहल में जा अपने पुत्र विक्रमसेन को राजसिंहासन दे सब की आज्ञा लेकर महोत्सवपूर्वक संसाररूपी समुद्र को पार करनेवाली दीक्षा ग्रहण की। पीछे निरतिचार से दूषण रहित चारित्र का पालन करते हुए बारह अङ्ग का अध्ययन किया।

एक दिन गुरु से बीसस्थानक तप की महिमा सुनी उसमें नवमें दर्शन पद की महिमा सुन उस पद की आराधना

[illegible]

इस प्रकार धरण के कहने और उसकी कुक्रिया को नहीं मानकर भी धनदेव मातापिता की आज्ञा ले भाई के साथ परदेश रवाना हुआ। मार्ग में चलते २ धरण ने धनदेव से कहा कि हे भाई! संसार में सुख धर्म से होता है या पाप से? धनदेव ने कहा भाई सुख धर्म से ही होता है और सुख का कारण रूप धर्म का महत्व बतानेमें कौन समर्थ है। धर्म इच्छित अर्थ और भोग देनेवाला है तथा अन्त में स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति भी धर्म से ही होती है।

धरण ने कहा—भाई! तेरा कहना झूठा है क्योंकि लोग अधर्म से सुखी होते हैं। यह बात प्रत्यक्ष है इस प्रकार विवाद करते हुए दोनों भाइयों ने यह शर्त की कि हम दोनों की बात किसी से पूछनेपर जिसकी बात सच बतावे वह दूसरे की आँख निकाल ले। यह शर्त कर एक गाँव में जाकर किसी अज्ञानी आदमी से पूछा प्राणियों को जो सुख होता है वह धर्म से होता है या अधर्म से। अज्ञानी ने उत्तर दिया कि अधर्म से सुख होता है। धर्म तो केवल

के लोगों को ठगने के लिए प्रपंच मात्र है । इस प्रकार धनदेव
ं हार गया । इसलिए पापात्मा धरण ने निर्दयता से उसकी दोनों
ंखें निकाल ली । पीछे दोनों वहां से चले । रास्ते में एक भयंकर
गल आया वहां धनदेव को छोड़ धरण चुपचाप घर आया और
ता-पिता को रुदन करते हुए कहने लगा कि हम दोनों भाई
रस्ते में जङ्गल आने से वहां विश्राम करने को ठहरे वहां एक विक-
ल बाघ ने आकर धनदेव का भक्षण कर लिया और मैं भय से
ापिस यहां चला आया ।

इस तरह धरण के मुंह से धनदेव की मृत्यु की बात सुन
ाता-पिता और धनदेव की स्त्री हृदय विदारक विलाप करने
गे । पुत्र मोह से माता मूर्छित हो गई । धनदेव की
त्री भी इस प्रकार विलाप करने लगी कि वज्र समान हृदय
ाले मनुष्य का दिल भी पिघल जाय । इस तरह सब स्वजन
ानदेव के वियोग से दुःखी हुए । परन्तु दुष्ट धरण को तो
प्रसन्नता ही हुई ।

पुण्यात्मा धनदेव को जंगल के वनदेवता ने पुण्यात्मा
समझ उस पर प्रसन्न हो दिव्य अंजन से उसके नेत्र निर्मल
किए जिससे हर्षित हो धनदेव वनदेवता की स्तुति करने
लगा । वनदेवता ने वह दिव्यांजन उसको देकर कहा कि यह
अंजन किसी भी अन्धे की आंख में लगाने से उसके नेत्र
निर्मल हो जायेंगे । ऐसा कह वह देव अदृश्य हो गया । पीछे

धनदेव को राज्य मिला इसकी सूचना उसके माता-पिता और स्वजनों को मिली इसलिए भरत सिवाय सबको खुशी हुई और भरत खेद पूर्वक विचारने लगा कि मै तो उसे जङ्गल में नेत्र विहीन कर छोड़ आया था और उसे इतना बड़ा विशाल राज्य कैसे मिल गया ? अब पुनः किसी उपाय से उसका नाश करूँ तभी मेरे मन को शान्ति होगी। ऐसा विचार कर नीच अपने पिता से कहने लगा कि हे तात! आपके पुण्य

पीछे माता-पिता को बुला सबसे हर्ष पूर्वक मिल मलय केतु पुत्र को पिता के सुपुर्द कर भुवनप्रभ मुनि के पास चारित्र लिया। धीरे २ सब अङ्ग उपाङ्ग पढ़ आम्यादि गुणों से विभूषित हो गुरू के पास विनयपूर्वक रह ग्राम नगरादि में विचरने लगा।

एक दिन धनदेव मुनि ने गुरू से देशना सुनी कि जो कोई सर्व गुणों में प्रधान विनय गुण से गुरूजनों को संतुष्ट करता है उसे शास्वत सुख प्राप्त होता है, क्योंकि विनय से ज्ञान और ज्ञान से शुद्ध समकित की प्राप्ति होती है, उससे सम्यक् चारित्र, चारित्र से संवर, संवर से तपस्या, तपस्या से निर्जरा, निर्जरा से अष्ट कर्म का नाश, कर्मनाश से केवलज्ञान और उस से अनन्त अव्याबाध मोक्ष प्राप्त होता है।

धनमुनि ने इस प्रकार गुरू से विनय की महिमा सुन गुरू आदि पंच परमेष्ठी का त्रिकरण शुद्धि से विनय करने का नियम लिया।

एक बार गुरू महाराज के साथ विहार करते २ सांकेतपुर नगर के उद्यान में आये। वहाँ आदित्य चैत्य में त्रैलोक्य बन्धु श्री जिनेश्वर की प्रतिमा को वन्दन करने धनदेव गये। वहाँ विनयपूर्वक शुद्ध भाव से स्थिर हो भगवान् की स्तुति करने लगे। उस समय धरणेन्द्र वहाँ भगवान् के दर्शन करने आया। उसने मुनि को निश्चल ध्यान से भगवान् की स्तुति

घरण की बात सुन राजा को क्रोध आया और बोला कि ठीक है अब मैं इसका उपाय करूँगा। ऐसा कह घरण को विदा किया और एकान्त में बैठ विचार करने लगा कि अब क्या करना चाहिये। यदि खुल्लम खुल्ला मरवाता हूँ तो लोक में निन्दा होगी और पुत्री को भी दुःख होगा। इसलिए किसी आदमी के द्वारा गुप्त रीति से मरवा डालना चाहिये। ऐसा विचार कर दूसरे दिन मध्यरात्रि को धनदेव को बुलाया और हत्या करनेवाले को कह दिया कि वह जब रास्ते में आवे तब उसे बिना कुछ पूछे मार डालना।

राजा के संकेत के अनुसार रात्रि को राजा का आदमी धनदेव को बुलाने आया। तब घरण ने कहा हे भाई तू यहीं रह मै ही राजा के पास जाता हूँ। ऐसा कह धनदेव की आज्ञा ले घरण हर्ष पूर्वक राजा के पास जाने को निकला। मार्ग में हत्यारे ने बिना कुछ पूछे उसे मार डाला। मर कर वह सातवीं नरक में गया। कहा है कि -

पड्भिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैः षड्भिरेव दिनैः किलः।
अत्युग्रपुन्यपापांना-मिहैव जायते फलं ॥१॥

अर्थ—इस जगत में अति उग्र पुण्य पाप का फल छः मास तथा छः पक्ष या छः दिन में ही मिल जाता है।

बाद में धनदेव को सारी हकीकत मालूम हुई इसलिए उसे संसार से वैराग्य हुआ और चारित्र लेने को तैयार हुआ।

पीछे माता-पिता को बुला सबसे हर्ष पूर्वक मिल मलय केतु पुत्र को पिता के सुपुर्द कर भुवनप्रभ मुनि के पास चारित्र लिया। धीरे २ सब अङ्ग उपाङ्ग पढ़ क्षाम्यादि गुणों से विभूषित हो गुरू के पास विनयपूर्वक रह ग्राम नगरादि में विचरने लगा।

एक दिन धनदेव मुनि ने गुरू से देशना सुनी कि जो कोई सर्व गुणों में प्रधान विनय गुण से गुरूजनों को संतुष्ट करता है उसे शाश्वत सुख प्राप्त होता है, क्योंकि विनय से ज्ञान और ज्ञान से शुद्ध समकित की प्राप्ति होती है, उससे सम्यक् चारित्र, चारित्र से संवर, संवर से तपस्या, तपस्या से निर्जरा, निर्जरा से अष्ट कर्म का नाश, कर्मनाश से केवलज्ञान और उस से अनन्त अव्याबाध मोक्ष प्राप्त होता है।

धनमुनि ने इस प्रकार गुरू से विनय की महिमा सुन गुरू आदि पंच परमेष्ठी का त्रिकरण शुद्धि से विनय करने का नियम लिया।

एक बार गुरू महाराज के साथ विहार करते २ सकितपुर नगर के उद्यान में आये। वहाँ आदित्य चैत्य में त्रैलोक्य बन्धु श्री जिनेश्वर की प्रतिमा को वन्दन करने धनदेव गये। वहाँ विनयपूर्वक शुद्ध भाव से स्थिर हो भगवान् की स्तुति करने लगे। उस समय धरणेन्द्र वहाँ भगवान् के दर्शन करने आया। उसने मुनि को निश्चल ध्यान से भगवान् की स्तुति

ग्यारहवीं कथा

राजा अरूणदेव

जो ग्यारहवें आवश्यक पद की आराधना से तीर्थङ्कर हुवे

भरतक्षेत्र में शोभायमान विशाल मणिमन्दिर नगर में मणिशेखर राजा राज्य करता था। उसके शीलवान मणिमाला रानी थी। सर्व कला कुशल पराक्रमी अरुणदेव पुत्र था। कुमार यौवनावस्था में आया तब एक दिन प्रधान के पुत्र सुमति के साथ उद्यान में बसन्त क्रीड़ा करने गया। उस समय वहाँ विविध प्रकार की खिली हुई वनस्पति से चित्त में प्रफुल्लित हो उठा। प्रसन्न चित्त से उद्यान की प्राकृतिक सुन्दरता देखते २ कुमार ने उद्यान के एक भाग में वृक्षों की शीतल छाया में पेड़ की डाल पर बँधे हुए झूले पर झूलती हुई एक अनुपम सौन्दर्यशालिनी युवती को देखा। उस सुन्दरी को देख कुमार काम पीड़ित हो स्थिर दृष्टि से अतृप्त इच्छा से उसकी तरफ देखने लगा। इतने में एक विद्याधर ने आकाश मार्ग से आकर कुमार और उसके मित्र को वहां से उठाकर किसी अरण्य में छोड़ दिया। वहाँ उस विद्याधर के साथ कुमार ने युद्ध किया। इस युद्ध में कुमार ने तलवार के प्रहार से विद्याधर को निर्बल कर पृथ्वी पर पटका। वह

तीव प्रकार से रुदन करने लगा। उसके रुदन को सुन उसका भाई अश्वनीवेग खेचर अचानक आकाश मार्ग से उतर आया। उसने अपने भाई की दुर्दशा देख अत्यंत क्रोधित हो कुमार और उसके मित्र को उठाकर आकाश में उछाला। वहाँ से वे किसी अल्प जलवाले अन्धेरे कुए में गिर पड़े। बहुत कठिनाई से दोनों मित्र आगे चले।

चलते २ वे किसी अरण्य में पहुंचे। वहां लक्ष्मीदेवी के मन्दिर के पास किसी पुरुष को वृक्ष की डाल पर बंधा हुआ देखा और पास ही मनोहर आभूषणों से विभूषित सुन्दर स्त्री को विलाप करते देखा। उसके पास जाकर कुमार ने पूछा हे बहिन! यह पुरुष कौन है? और इसकी ऐसी हालत कैसे हुई? इसके पास बैठकर तू क्यों रो रही है?

कुमार के वचन सुन सुन्दरी बोली हे परोपकारी पुरुष! यह विद्याधरों का स्वामी मेरा पति है। हम क्रीड़ा करने के लिए इस लक्ष्मीदेवी के वन में आकर पुष्प एकत्र करते थे, इतने में लक्ष्मीदेवी ने कुपित हो मेरे स्वामी की यह दुर्दशा की है। यदि आप कृपा कर मेरे पति को बंधन से छुड़ा दें तो बड़ा उपकार मानूंगी।

विद्याधरी के करुणार्द्र वचन सुन कुमार विद्याधर को छुड़ाने के लिए लक्ष्मीदेवी की स्तुति करने लगा।

'हे भक्तवत्सल जगदेश्वरी, कमलादेवी तेरी जय हो! हे सुगुणभण्डार, जगदाधार, पद्मादेवी! तेरी जय हो। हे

नगा। गा कृपा से मूर्ख पंडित हो जाते हैं और अवगुणा णवान हो जाते हैं! हे सुरासुर सेवित परमेश्वरी! मुझ गीव की स्तुति सुन प्रसन्न हो मुझे दर्शन दे।

कुमार की स्तुति सुन लक्ष्मीदेवी प्रत्यक्ष हो प्रसन्न मुख कहने लगी—हे वत्स! मैं तेरे पर प्रसन्न हुई हूँ, तू इच्छित र माग, मैं खुशी से दूँगी।

कुमार ने कहा—हे माता! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुई हैं तो इस विद्याधर को बंधन से मुक्त कर दें। यही मेरी इच्छा है। तुरन्त देवी ने विद्याधर को बंधन मुक्त कर कहा कि हे खेचर! तेरे को बंधन मुक्त करा नवीन जन्म दिलानेवाले इस परोपकारी कुमार का पूर्ण आभार मान। बंधनमुक्त हो खेचरपति दोनों हाथ जोड़ नम्र वचन से कुमार को कहने लगा, हे परमार्थ वत्सल पुरुषोत्तम! आप जैसे पुरुषों से ही यह पृथ्वी रत्नगर्भा कहलाती है। यह सत्य है कि आज मुझे आपकी कृपा से नया जन्म मिला है। आपने जीवितदान दिया इसके बदले में मैं आपको कुछ भी दे सकूँ इस योग्य नही हूं फिर भी मेरे पास यह प्रज्ञप्ति आदि दस विद्याएं हैं इन्हें ग्रहण कर मुझे कृतार्थ कीजिये।

खेचरपति के आग्रह से कुमार ने विद्यायें ग्रहण की। पीछे विद्या के प्रभाव से दोनों मित्र आकाश मार्ग से आगे चले। आगे जाते २ वृक्षों की श्रेणियों से भरपूर और फल फूलों से

विद्या के प्रभाव से विद्याधर के साथ युद्ध कर अपने
छुड़ाया । पीछे अपने पराक्रम से सब विद्याधरों को
राजा हुआ । सच है पुण्यशाली को पग पग पर सम
विजय मिलती है ।

एक बार जयन्तस्वामी मुनि की धर्मदेशना सुन
मित्र और स्त्री सहित समकित मूल बारह व्रत ग्रहण
फिर सब शाश्वत और अशाश्वत जिनालयों में जिन
वन्दना कर समकित निर्मल करने लगा । कुछ समय
पूर्वक निर्गमन कर विद्याधर की श्रेणी का राज्य व
सुपुर्द कर मित्र और पत्नी सहित दिव्य विमान
आकाश मार्ग से मणिमन्दिर नगर में आया । माता-पि
खबर मिलते ही उन्होंने हर्ष व उत्साह पूर्वक नगरी
कराया । कुमार ने विनयपूर्वक माता-पिता को
किया । शान्तिमति ने भी विनयपूर्वक सास श्वसुर
स्पर्श किए । माता-पिता पुत्र की सम्पदा को देख हर्षि

पीछे अरुणदेव को राज्यसिंहासन दे राजा ने
गुरू के पास चारित्र लिया । अरुणदेव न्याय पूर्वक
पालन करने लगा । कुछ समय बाद राणी के गर्भ से
उत्पन्न हुवा ।

एक दिन [illegible] । [illegible]
से उन्होंने [illegible] श्मशान में [illegible] वृक्ष पर [illegible]
वानरों को देखा । उनको देखते ही राजा को जातिस्मरण
ज्ञान हुवा जिससे उन्होंने अपना पूर्व भव जिस प्रकार देखा

हस्तिनापुर नगरी में कोई महाधनाढ्य वैद्य रहता था।
वह लोगों को अनेक प्रकार की चिकित्सा करता था । उसके
यहां कोई एक तपस्वी मुनि औषध लेने आये । उसने उनको
औषध दी जिससे उन कृपालु मुनि ने उसे धर्मोपदेश देते
हुए कहा कि-

गृहिणां गृहधर्मस्य, सारमेतत्परं स्मृतम् ।
यथाशक्ति सुपात्रेभ्यो, दानं यच्छुद्धवस्तुनः ॥१॥

अर्थः—गृहस्थी के गृहस्थाश्रम धर्म का यही परम सार रूप
फल बताया है कि शुद्ध वस्तु का यथाशक्ति दान देना।
सारांश यह है कि सुपात्र को शक्ति अनुसार वस्तु का दान
देना। यह गृहस्थो का गृहस्थधर्म का परम साररुप कर्त्तव्य
बताया है।

इस तरह वह मुनि उस वैद्य को हमेशा उपदेश देते जिससे
वह वैद्य मुनि को निरन्तर शुद्ध भाव से शुद्ध औषध देता
और उनका बहुत आदर करता । पीछे वह वैद्य आर्तध्यान से
मर कर जङ्गल में पाँच सौ वानरियों का स्वामी हुवा ।

एक बार अरण्य में क्रीड़ा करते उस वानर ने एक मुनि
पैर में तकलीफ देखी। उन्हें देखते ही वानर को पुर्व भव
द आया। पुर्व के अभ्यास से सब व्याधियों की औषधियों
। जानने लगा। फिर उसने जंङ्गल की किसी वनस्पति को
त से चबाकर पैर में बाँधी। थोड़ी देर में मुनि का दर्द दूर
गया। मुनि ने उसे योग्य जीव समझ उपदेश दिया। इसलिये
नर को समकित हुवा और तीन दिन तक सामायिक व्रत
अनशन कर तीन पल्योपम की आयुष्यवाला सौधर्म कल्प में
। हुआ। वहाँ से चव कर, अरुणदेव कुमार हुआ। इस
कार अपना पूर्व भव जान अरुणदेव ने राजर्षि को प्रणाम
या। इतने में मुनि ने कायोत्सर्ग पूरा कर धर्म लाभ दिया।
र राजा उनके सामने बैठा और मुनि ने देशना आरंभ की।

हे राजा! अत्यन्त कष्ट से प्राप्त यह मानव देह और
नमें भी निरोग शरीर, उत्तम कुल, और जैन धर्म का
लना महा दुर्लभ है। इसमें भी देवादि तीन तत्व पर श्रद्धा
ना और भी कठिन है। उन तीन तत्वों का स्वरुप यह है।
सठ इन्द्रों से सेवित चौतीस अतिशययुक्त सर्वज्ञ जिनेश्वर
।, पंच महाव्रतयुक्त, नवविध ब्रह्मचर्य पालने वाले, सावद्य
ापार से विराम पाए हुए गुणवंत गुरु तथा जिनोदित
ादि दस विध धर्म। इन तीनों को यथार्थ भाव पूर्वक ग्रहण
: तब संसार की अल्पता के हेतुरुप सम्यग्दर्शन की प्राप्ति

उसके लिये क्षमा मांगती हूँ। इस प्रकार मुनि के गुणगान कर विनयपूर्वक वन्दना कर देवी अपने स्थान पर गई।

राजर्षिमुनि निरतिचाररूप से चारित्र का पालन कर, अन्त में अनशन कर बारहवें देवलोक में समृद्धिशाली देव हुए। वहाँ से चव कर महाविदेह में तीर्थङ्कर पद प्राप्त कर मोक्ष जावेंगे।

बारहवीं कथा

राजा चन्द्रवर्मा

जो बारहवें शीलव्रत पद की आराधना से तीर्थंकर हुवे

भरतक्षेत्र में अनेक जिनालयों से भरपूर मनोहर माकंद पुर नगर था। वहाँ पराक्रमी चंद्रवर्मा न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करता था। उसके रूपवती और गुणवानचंद्रावली नामकी रानी थी।

एक बार उस नगर के उद्यान में बहुत मुनियों के साथ चार ज्ञान को धारण करनेवाले श्री नन्देश्वर आचार्य पधारे देवताओं ने मेरू शिखर जैसा मनोहर ऊँचा सुवर्ण का सिंहासन बनाया व उस पर गुरू महाराज बैठे। उद्यानपति ने गुरू महाराज के पधारने की सूचना राजा को दी। गुरू का आगमन सुन राजा बड़े ठाट बाट से परिवार सहित वंदना करने चला। आते समय मार्ग में राजा ने समतारस के सिंधु समान, नेत्रों को आनन्द देनेवाले सुवर्ण की कांतिवाले दो मुनियों को कायोत्सर्ग में खड़े देखा। उनको यौवनावस्था में ऐसा दुष्कर व्रत का पालन करते देख राजा को विस्मय हुवा। पीछे गुरू के पास आ विनयपूर्वक वंदना कर योग्य आसन पर बैठ गुरू को पूछने लगा हे करूणानिधि! मैंने मार्ग में दो मुनियों को देखा। सुकुमार देह और योवन वय होने पर भी उन्होंने चारित्र क्यों लिया? आप कृपा कर बताइये?

गुरू ने कहा हे राजन्! उनके वैराग्य का कारण ध्यान से सुन। कुशस्थलपुर नगर में लोक प्रिय और धनाढय मदन सेठ रहता था। उसके कलह करनेवाली और दुर्गुणों की भंडार चँडा और प्रचँडा दो स्त्रियाँ थीं। उन स्त्रियों के कलह से सेठ की लक्ष्मी भी पलायन कर गई। कहा है कलह से लोक में अपयश, अप्रीति और उद्वेग वगैरह अनेक प्रकार के कष्ट उत्पन्न होते हैं। दोनों स्त्रियों के कलह से सेठ कुछ दिन तक प्रचण्डा के घर सुख पूर्वक रहा।

काशीपुर पहुँचा और सोचने लगा कि अब मैं यहां निर्भय होकर रहूंगा। क्योंकि इतनी दूर मैं रहता हूं इसका पता उन दोनों को कहां से लगेगा ! यह सोच मदन सेठ नगर में आया उस नगर में धनाढ्यभानुसेठ रहता था। उसके भानुमति स्त्री के चार पुत्र और एक विद्या और कला को जाननेवाली विद्युत समान कांतिवाली विद्युल्लता पुत्री थी। वह पिता की प्यारी थी। ब्याह करने योग्य होने पर सेठ उसके समान गुणवाले पति की खोज में था। मदन सेठ घूमता २ उसी सेठ की दुकान पर जा पहुँचा। भानुसेठ ने उसे देखा। उसे देख वह विचारने लगा कि यह कोई कुलीन मनुष्य मालूम होता है। ऐसा सोच आदर पूर्वक अपने घर लेगया और सम्मान पूर्वक रखा। रात्रि में भानुसेठ की कुलदेवी ने आकर स्वप्न में कहा कि तेरी पुत्री के योग्य यह वर है, इसके साथ तेरी पुत्री का ब्याह कर देना। देवी के कहने से सेठ ने दूसरे दिन स्वप्न की बात सब कुटुम्बियों को कही। सब की सम्मति से उत्साह पूर्वक मदन सेठ के साथ विद्युल्लता का दान कर दिया।

कुछ दिन तक मदन सेठ श्वसुर के घर सुखपूर्वक रहा। पीछे एक दिन अपने घर जाने की इच्छा हुई। यह बात उसने अपनी प्रिया को बताई। उसने जाने के लिये स्वीकृति दी और मार्ग में भोजन के लिये एक बर्तन में सत्तू रख कर दे दिया। वह से

उस समय उस नगर में वसुदेव सेठ के श्रीदत्तकुमार और श्रीपुंज सेठ की पुत्री श्रीपति का लग्न होनेवाला था । इसलिये दोनों घरों में आनन्द और धाम धूम हो रही थी । उसे देखने के लिए अनेक स्त्री पुरूष इकट्ठे हुए थे । बरात भी ठाट बाट से नगर में घूमती २ श्रीपुंज सेठ के घर आई । वर राजा तोरण पर पहुचा । इतने में क्रूर कर्मों एवम् पूर्व पाप कर्मोदय के कारण वर राजा की वहीं मृत्यु हो गई । अचानक पुत्र के मृत्यु से वसुदेव वड़ा दुखी हुआ । दुल्हन का परिवार भी दुखी हुवा । सब लोग शोकातुर हो अपने २ घर गये । इतने में श्रीपुंज शेठ ने देववाणी सुनी की हे सेठ तू तेरी पुत्री का विवाह तेरे घर के सामने छिपे हुए धनदेव के साथ आज ही कर देना क्योंकि यह कन्या उसी के योग्य है । यह सुनते ही श्रीपुंज सेठ ने धनदेव को ढुंढ निकाला और उसके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया । उस समय नगर में गई हुई धनदेव की दोनो स्त्रियाँ लग्न समय वहाँ आ पहुची और विवाह मण्डप में अपने पति को देखा । उसे देखते ही आश्चर्य में हो दोनों कहने लगी कि अपना पति यहाँ कैसे आया ! क्या यह अपने को धोखा देकर अपने पीछे २ आया है ? परन्तु ऐसा नहीं हो सकता । बहुत से मनुष्यों की आकृति समान होती है इसलिए अपने को ऐसा लगता है । हजारों कोस दूर अपने नगर से वह यहाँ किस तरह आ सकता है ? इस

तरह दोनो ने अपना समाधान कर, लग्नोत्सव देख घर लौटने लगी।

लग्न पूर्ण होने पर धनदेव ने कन्या के वस्त्र पर कुं कुम से एक श्लोक लिखा।

कुत्र वसती रत्नपुर, कः क्वासौ गगन मंडनश्चूतः।
धनपति सुत धनदेवे, विधेर्वशात्सुखकृतेश्चूतः ॥१॥

अर्थः—रहने का स्थान रत्नपुर कहाँ ? और आकाश का भूषण रूपी यह आम्र कहाँ ? परंतु यह सब धनपति पुत्र धनदेव के लिये दैवयोग से यह आम्र सुख देनेवाला हुवा। यह लिख और किसी बहाने से बहार निकल गुप्त रीति से शीघ्र नगर के बाहर आया। वहाँ उसने स्त्रियों को जल्दी २ जाती हुई देखी। थोड़ी देर में सब आम्र के पास पहुँचे। दोनों स्त्रियाँ जल्दी पेड़ पर चढ़ गई। धनदेव भी पहले की तरह अपनी जगह बैठ गया। इतने में आम्र वृक्ष वायु वेग से गगन मार्ग से होता हुआ अपनी जगह आकर रुक गया। तब धनदेव स्त्रियों के पहुँचने से पहले घर पहुँच सो गया।

दूसरे दिन सवेरे जल्दी दूसरी स्त्री पति को जगाने गई। वहाँ जाकर उसने देखा कि उसके हाथ में लच्छा और मेहंदी और ललाट पर कुंकुम का टीका है इसलिए वह तुरंत पहली स्त्री के पास जाकर कहने लगी कि बहन पति के हाथ में लच्छा, मेहदी और ललाट पर कुं कुम का टीका है।

इसलिये आदमी [illegible] को [illegible] की [illegible]
करनेवाले मारे जाते है। इसमें [illegible] [illegible] । [illegible]
सुन्दर [illegible] से [illegible] जान ली है। अब क्या होगा ?

पहली स्त्री ने कहा इसमें क्या है? ऐसा कह एक और
मंत्र कर सोते हुए धनदेव के सीधे पैर पर बांध दिया। डोर
बांधते ही वह तोता बन गया। उसे पकड़ पींजरे में रख दिया
अब रत्नपुर नगर का हाल सुनिये कि वहाँ क्या हुआ। ज
धनदेव प्रातःकाल तक वापिस नहीं आया तब श्रीमति ने अप
पिता को कहा यह सुन श्रीपुंज सेठ दुखी हुआ। इतने
सेठ की नजर श्रीमति के वस्त्र पर लिखे हुए श्लोक
पड़ी। श्लोक पढ़कर सेठ खुश होकर बोला हे पुत्री! देख ते
वस्त्र पर तेरे पति ने श्लोक लिखा है उससे उसका नाम औ
नगर का पता चलता है। वह हसंतीपुर नगर के धनपति से
का पुत्र धनदेव है। वह किसी कारण वश रात्रि को ही वापि
चला गया है। अब अपने को पता लगाना चाहिये। तू ज
भी चिंता मत कर। उसी दिन सागरदत्त व्यापारी अ
जहाज लेकर हसंतीपुर जानेवाला था। उसके साथ श्री
सेठ ने एक पत्र और बहुमूल्य हार धनदेव को देने के लि
सागरदत्त को दिया। सागरदत्त का जहाज अनुकूल पवन ह
के कारण शीघ्र ही हसंतीपुर पहुँच गया। वहाँ आकर धन
को पता लगा, उसके घर जाकर पूछा कि धनदेव सेठ है क्या

स्त्रियों ने जवाब दिया कि नहीं है, वे तो राज्य
र्य से ताम्रलिप्त नगर गये हैं। आप कहाँ रहते हो और
या काम है?

सागरदत्त ने कहा कि मैं रत्नद्वीप के रत्नपुर नगर का
पारी हूँ। वहाँ से श्रीपुंज सेठ ने धनदेव सेठ को यह पत्र
र हार भेजा है।

स्त्री ने कहा बहुत अच्छा लाओ। सेठ जाते समय कह
ये थे कि यदि कोई रत्नपुर जानेवाला हो तो उसके साथ
ह तोता श्रीमति के पास भेज देना। इसलिये तुम यह तोता
मति, को दे देना। यह कह पत्र व हार लेकर तोते का पींजरा
ागरदत्त को दे दिया।

सागरदत्त पींजरा ले थोड़े दिनों में अपने नगर में आया
र पींजरा सेठ को दे जो कुछ हुआ वह सब कह सुनाया।
ने वह तोता श्रीमति को दे दिया। श्रीमति निरन्तर उसे
ने पास रखती और विनोद करती। एक दिन तोते के पैर
डोरा बंधा देख उसे तोड़ डाला डोरा टूटते ही धनदेव
ने असली रूप में प्रगट हो गया। यह देख सब आश्चर्य
पूछने लगे कि ऐसा होने का क्या कारण है? धनदेव ने
ा कि यह सब कर्मवश हुवा है। ऐसा कह अपनी
यों की बात कहीं। कुछ दिन सुख पूर्वक श्रीपुंज सेठ
यहाँ [illegible] अपने नगर में आया। परन्तु

कर दी और जहाँ २ मुनि गोचरी के लिये जाते वहाँ सब जगह गोचरी को अशुद्ध कर देता। इस तरह रात दिन कष्ट होने लगा। फिर भी समता के सिन्धु राजर्षि मुनि विषाद रहित हो सब सहन करते। छः माह तक देव ने उपसर्ग चालू रखा और मुनि विना आहार के दिन निर्गमन करते। गुरु महाराज ने ज्ञानोपयोग से देवोपसर्ग जान कनककेतु मुनि को दूसरे दिन उसी नगर में ब्रह्मचर्य को पालन करनेवाले धनंजय सेठ के घर गोचरी के लिए भेजा। क्योंकि जो निर्मल शीलवान होते है उनके यहाँ देव भी उपसर्ग नहीं कर सकते। गुरु महाराज की आज्ञा से दूसरे दिन मुनि धनंजय सेठ के घरगोचरी के लिए गये और वहाँ से शुद्ध आहार पाणी ग्रहण किया। यह देख वरुण देव ने उस घर में सुवर्ण की वृष्टि की और प्रत्यक्ष हो मुनिराज की स्तुति कर क्षमा माँ गुरु महाराज के पास आकर पूछने लगा कि हे प्रभु ! कनक मुनि को इस घोर तपस्या का क्या फल मिलेगा ? इस गुरु महाराज ने कहा हे देव ! यह मुनि इस तप के प्र तीर्थङ्कर होंगे। गुरु मुख से यह सुन देव अपने स्थान ओर गया। राजर्षि मुनि वहाँ से चल कर चौथे देवलो सुख भोगकर महाविदेह क्षेत्र में जिनपद प्राप्त कर नि पद प्राप्त करेंगे।

पन्द्रहवीं कथा

राजा हरिवाहन

पंद्रहवें सुपात्रदान पद आराधन से तीर्थङ्कर हुवे

भरतक्षेत्र के कलिंग देश में समृद्धिशाली कंचनपुर नगर था। वहाँ का शौर्यादि गुणालंकृत महान प्रतापी हरिवाहन राजा था। उसके महान बुद्धिशाली सब प्रधानों में मुख्य विरंची नाम का प्रधान था। उसने अपार द्रव्य व्ययकर एक मनोहर देव भुवन समान श्री ऋषभदेव स्वामी का मन्दिर बनवाया। एक दिन मंत्री महाराज हरिवाहन को मन्दिर में भगवान के दर्शन करने के लिए ले गया। उस समय उस मन्दिर के पास धनेश्वर सेठ के घर नाना प्रकार के बाजे बज रहे थे और स्त्रियाँ मङ्गल गीत गा रही थीं। यह देख राजा ने मंत्री से पूछा कि आज यहाँ क्या उत्सव हो रहा है? यह सुन मंत्री ने कहा महाराज आज धनेश्वर सेठ के यहाँ पुत्र जन्म का उत्सव है। इसी कारण यह सब धाम धूम है। पीछे मंत्री सहित जिन मन्दिर में जिनेश्वर के दर्शन कर अपने महल में लौट गया। दूसरे दिन राजा पुनः उसी चैत्य में दर्शन करने

कर दी और जहाँ २ मुनि गोचरी के लिये जाते वहाँ सब जगह गोचरी को अशुद्ध कर देता। इस तरह रात दिन कष्ट होने लगा। फिर भी समता के सिन्धु राजर्षि मुनि विषाद रहित हो सब सहन करते। छः माह तक देव ने उपसर्ग चालू रखा और मुनि बिना आहार के दिन निर्गमन करते। गुरु महाराज ने ज्ञानोपयोग से देवोंपसर्ग जान कनककेतु मुनि को दूसरे दिन उसी नगर में ब्रह्मचर्य को पालन करनेवाले धनंजय सेठ के घर गोचरी के लिए भेजा। क्योंकि जो निर्मल शीलवान होते हैं उनके यहाँ देव भी उपसर्ग नहीं कर सकते। गुरु महाराज की आज्ञा से दूसरे दिन मुनि धनंजय सेठ के घरगोचरी के लिए गये और वहाँ से शुद्ध आहार पाणी ग्रहण किया। यह देख वरुण देव ने उस घर में सुवर्ण की वृष्टि की और प्रत्यक्ष हो मुनिराज की स्तुति कर क्षमा माँग गुरु महाराज के पास आकर पूछने लगा कि हे प्रभु! कनककेतु मुनि को इस घोर तपस्या का क्या फल मिलेगा? इस पर गुरु महाराज ने कहा हे देव! यह मुनि इस तप के प्रभाव से तीर्थङ्कर होंगे। गुरु मुख से यह सुन देव अपने स्थान पर लौट गया। राजर्षि मुनि वहाँ से चल कर चौथे देवलोक के सुख भोगकर महाविदेह क्षेत्र में जिनपद प्राप्त कर चिदानन्द पद प्राप्त करेंगे।

समारम्भ करनेवाले कुगुरु के प्रति गुरु की बुद्धि तथा दयारहित और हिंसा से पूर्ण कुधर्म के प्रति धर्मबुद्धि रखी जो महा मोह के प्रभाव से मिथ्यात्व है। किसी व्याधि से पीड़ित कोई प्राणी उसी जन्म में दुःखी होता है परन्तु मिथ्यात्व रूपी महा व्याधि से पीड़ित प्राणी तो अनेक जन्म पर्यन्त दुःख प्राप्त करता है। यह समझ मिथ्यात्व का त्याग कर शुद्ध देव गुरु और धर्म के प्रति रुचि रखना यही परम श्रेय का कारण है।

इस प्रकार गुरु की देशना श्रवण कर राजाको संवेग हुआ और राजमहल में आकर पुत्र को राज्य दे उत्साह पूर्वक संयम अङ्गीकार किया। समिति, गुप्तियुक्त चारित्र का पालन करते हुए द्वादशांगी का अध्ययन किया।

एक दिन गुरु से देशना में बीस स्थान के बारे में व्याख्यान में सुना कि जो महाभाग्य अन्नपानादि से भक्ति-पूर्वक साधु संविभाग का पालन करता है वह श्री जिनेश्वर की सम्पदा प्राप्त करता है और अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है।

यह अधिकार सुन राजर्षि मुनि हरिवाहन ने अभिग्रह लिया कि आज से निरन्तर उत्तम मुनियों को अन्नपानादि देकर उसमें से जो शेष रहेगा वही मैं काम में लूँगा। ऐसा अभिग्रह ले निरन्तर मुनियों की आहार पानी औषधादि से भक्ति करने लगा। एक समय इन्द्र महाराज ने देव सभा में

हरिवाहन मुनि की साधु संविभाग पर अनन्य भक्ति देख प्रशंसा की। इस पर शङ्कित हो सुवेल देव मुनि की परीक्षा करने के लिए कपटी साधु का रूप बनाकर श्रीपुरपत्तन में जहाँ हरिवाहन मुनि थे वहाँ तपस्या से क्षीण देहवाला बन पारणा करने के लिए आया। उस समय अपने काम में आने वाला जो आहार था वह उसको दे दिया। पीछे पुनः अपने लिए आहार ला गुरु के पास आलोची सज्जाय कर गोचरी करने बैठा। इतने में उस मायावी देव ने हरिवाहन मुनि के देह में अत्यन्त दुःसह वेदना उत्पन्न कर दी। यह वेदना देख गुरु आदि साधु अत्यन्त खेद करने लगे। पीछे वैद्य के बताये अनुसार किसी गृहस्थ के घर से जल्दी औषधि ला मुनिराज को लेने के लिए कहा। परन्तु मुनि ने मना कर दिया। इसलिए गुरु ने कारण पूछा। उत्तर में मुनि ने दोनों हाथ जोड़कर कहा कि हे प्रभु! यह औषध किसी सुपात्र मुनि को दिए बिना मैं ग्रहण नहीं करूँगा चाहे इससे भी अनन्तगुणी वेदना हो और कदाचित प्राण भी चले जाय। क्योंकि जो यह अन्य मुनियों के दिये बिना ग्रहण करता हूँ तो मेरे व्रत का भंग होता है और मैं दुर्गति को प्राप्त करनेवाला होता हूँ। इसी संविभाग व्रत के पालन करने से बाहु मुनि समस्त भारतक्षेत्र के स्वामी हुए और नन्दीशेग मुनि ने वासुदेव की ऋद्धि प्राप्त की। इसलिए हे प्रभु मुझे चाहे जितनी असह्य

से विभूषित रति समान स्वरूपवान रानी जयमाला से जीभूतकेतु पुत्र हुवा। कुमार यौवनावस्था में पहुँच सर्व कलाओं में कुशलता प्राप्त कर अपने सद्गुणों से सब लोगों का प्यारा बन गया। इसके सिवा बुद्धि और शौर्यादि गुणों से उसकी कीर्ति सर्वत्र फैल गयी। कुमार के रूप गुणादिक की कीर्ति सुनकर रत्नस्थलपुर के राजा सूरसेन की पुत्री जो विद्या कला में सरस्वती के समान थी कुमार से प्रेम करने लगी और उसने उसी के साथ ब्याह करने का निश्चय किया। सुरसेन राजा ने पुत्री के अभिप्राय को जानकर स्वयंवर मंडप तैयार किया। उसमें सब देशों के राजाओं को आमंत्रित किए। जीभूतकेतु को भी आमंत्रित किया। कुमार पिता की आज्ञा ले थोड़ी सेना सहित रत्नस्थलपुर के लिए रवाना हुवा। मार्ग में सिद्धपुर नगर के पास अचानक कुमार को मूर्छा आ गया। यह देख सब अत्यंत दुःखी हुवे। अनेक प्रकार के मंत्र और औषधियों के उपचार करने पर भी सब कुपात्र को दिए गये दान के माफिक निष्फल हुआ। इतने में वहाँ अनेक गुणों के समुद्र और श्रुत के जानकर आचार्य श्रीअकलँकदेव पधारे। उनके प्रभाव सेकुमार की मूर्छा दूर हुई और तत्काल उनकी वंदना करने के लिए उठा। विनय पूर्वक वंदना कर कुमार गुरु के सामने बैठा। इसलिए उसे प्रतिबोध देने के लिए करुणासिंधु गुरु महाराज ने संसाररूप व्याधि का नाश करने में अमृत समान देशना देनी आरम्भ की।

[illegible] रहता था। वह यतिचर्या में निरन्तर प्रमादी और शातादि-गारंव में लुब्ध था। एक बार गुरु के साथ सांकेतपुर जाते हुए मार्ग में आसनपुर ग्राम के नजदीक गुरु ने दूसरे बाल ग्लानादि मुनियों को तृषातुर देख दुर्विनीत दुर्वासा मुनि को कहा कि तुम इन तृषातुर यतियों के लिए इस पास के गांव से प्रासुक जल ले आओ। वह सुन क्रोध से विवेक शून्य हो वह गुरु को जो मन में आया बोलने लगा। दूसरे स्थविरों के मृदु वचनों से समझाने पर शान्त होने के बजाय वह उलटा सारे गच्छ से द्वेष करने लगा। पीछे वह गच्छ छोड़ वहां से अकेला ही आगे चला गया। आगे अरण्य में रौद्र ध्यान के परिणाम से मर कर सातवीं नरक में तैंतीस सागरोपम आयुष्यवाला नारकी हुवा। बिना कारण मुनि की निंदा और द्वेष करने से बांधे हुए तीव्र कर्मों के विपाक से उसे वहाँ अत्यंत वेदना सहनी पड़ी। आयु पूर्ण होने पर वहाँ से निकल अनेक भव भ्रमण कर अत्यंत कष्ट सहन करते २ बहुत से कर्मों को क्षय किया। पीछे कौटुम्बिक ग्राम में मासोपवासी मुनि हुवा। कुछ समय तपस्या कर, सुख प्राप्त करने की जिज्ञासा से नियाणा कर वहाँ से मर कर तू राजकुमार हुवा है। पूर्व में की हुई तपस्या के पुण्य से यह ऋद्धि प्राप्त हुई है और जो मुनि निंदा का कर्म बांधा था वह भोगते हुए जो अवशेष रहा वह आज तेरे को उदय आया जिससे तुझे मूर्छा आई। मुनि [illegible] से उस कर्म का अब नाश हो गया है।

[illegible] ... मोक्ष जायेंगे । [illegible] ... मोक्ष का सुख प्राप्त करेंगी ।

सतरहवीं कथा

राजा पुरन्दर
जो सतरहवें संयम पद आराधना से तीर्थङ्कर हुवे

वाणारसी नगरी में विजयसेन राजा न्याय पूर्वक प्रजा का पालन करता था। उसके पद्ममाला और मालती नाम की दो रानियां थी। उनमें पटराणी पद्ममाला के कामदेव को भी पराभव करे ऐसा पुरन्दर नामका कुमार था। धीरे २ वह कुमार बड़ा हुआ और समस्त कलाओं में निपुण हो यौवनावस्था में पहुँचा।

एक दिन कुमार अकेला ही अरण्य में घूमने गया। वहाँ उसने एक मुनि को देखा। इसलिए उनके पास जाकर वन्दना

सन्मुख बैठ गया। इसलिये उसे गुणनिधि मुनि ने देशना दी कि सर्व संपदाओं का कारणरूप जो धर्म है उसका मूल बीज पर स्त्री का त्याग करना है। उन पुरुषों को धन्य है जो देवांगना समान स्वरूपवाली और हथनियों की तरह मस्त चाल से चलनेवाली प्रमदाओं को देखकर अपने चित्त में विकार उत्पन्न नहीं होने देते। इसी तरह उस स्त्री को धन्य है जो कामदेव समान अन्य पुरुष को देख जरा भी अपने मन को शिथिल नहीं होने देती और विधाता से मिले पति में ही संतोषवृत्ति रख आनन्द मनाती है। इस तरह जो स्त्री पुरुष शीलव्रत में दृढ़ रहते हैं वे अनेक सम्पदाओं के भोगनेवाले होते हैं।

इस प्रकार मुनि की देशना सुन कुमार पर स्त्री त्याग का व्रत लेकर अपने स्थान पर लौट गया। लिए हुए व्रत को जरा भी अतिचार न लगे इस प्रकार दृढ़ मन से छोटी को बहिन और बड़ी को माता समान गिन निर्मल भाव से व्रत कापालन करने लगा। अनेक मृगलोचनी ललित ललनाएं कुमार को राग से देखती परन्तु कुमार तो उसके सामने दृष्टि भी नहीं डालता।

एक बार कुमार की सौतेली माता मालती राणी अनंग समान अद्भुत रूपवाले कुमार को देख उस पर अनुरक्त हो गई। शशी समान कांतियुक्त यौवनपूर्ण कुमार को जैसे २ सराग से देखती वैसे २ वह उस पर विशेष आसक्त हो विरह

आया और कुमार को पुकार बुलाया। पुन्दर कुमार पिता की कोपित आवाज सुन मन में समझ गया कि अवश्य सौतेली माता के कारण से ही कुछ नई पुरानी बात हुई है। फिर अपने महल से बाहर आकर दोनों हाथ जोड़ कर विनय पूर्वक प्रणाम कर बोला—पिताजी ! क्या आज्ञा है ! राजा कोपित देखकर कुमार नीची गरदन कर खड़ा रहा इस से राजा को विशेष सन्देह हुआ कि अपराधी मनुष्य कर्म सन्मुख नहीं देखता इसलिए अवश्य इसने ही यह कुकर्म किय है। ऐसा समझ राजा अत्यन्त क्रोधित हो कहने लगा। अ नराधम ! नीच कुलांगार कुपुत्र ! मुझे स्वप्न में भी या आशा नहीं थी कि तु ऐसा पिशाच वृत्तिवाला पुरुष है।

कुमार ने कहा—पिताजी। मेरा दोष क्या है वह आ कहो। मैंने कभी आपकी आज्ञा का उलंघन कर कोई अका नहीं किया। राजा ने कहा अरे नीच ! तू मुख से मीठ बोलने वाला परन्तु हृदय में हलाहल जहर भरा हुआ पिशा है। तू आगे बोलना बन्द कर, चाँडाल भी जो काम नह करता वह कार्य कर के सत्यवादी बन कर पाप छिपाना चाहत है। कुमार ने कहा—पिताजी ! आप क्या कहते हैं वह तो मेर समझ में कुछ आता नहीं। चाँडाल से भी अधर्म कार्य करने में मेरी प्रवृत्ति हो ऐसा स्वप्न में भी होना कठिन है। इतना होने पर भी आप स्पष्ट कहो कि मेरे से कौनसा अकार्य हुआ है। राजा ने कहा—अरे पलीत ! क्या तु स्पष्ट कहलवान

हता है । चाँडाल ! तू तेरी सौतेली माता के साथ अगम्य
मन करते हुए भस्मीभूत क्यों नहीं हो गया ? राजा के ये
ब्द सुन कर कुमार कान पर हाथ दे चिल्ला कर बोला
रे प्रभु ! यह मै क्या सुनता हूं । इतने में राजा कहता है
तू क्या सुनता है, तू तेरे किये काले कार्य को सुनता है ।
रे कुलांगागार कुमार ! तू पुत्र होने से अवध्य है इसलिए
त्यु दण्ड नहीं देता हूं परन्तु जहाँ तक मेरी आज्ञा चलती है
हाँ तक की भूमि में तुझे अपना पैर भी नहीं रखना
हिए । कुमार ने कहा—पिता जी ! आप इस विषय में
त्यासत्य तो मालूम कीजिए कारण मै बिल्कुल अपराधी
हीं हूं । राजा ने कहा—अब एक शब्द बोले बिना अभी ही
गर से बाहर चला जा नहीं तो मेरी क्रोधाग्नि में जल कर
स्म हो जायगा । अब कुमार ने सोचा कि विशेष खुशामद
रना व्यर्थ है । ऐसा सोच माता-पिता को प्रणाम कर हाथ
तलवार ले एकदम नगर बाहर निकल गया । पद्ममाला
णी पुत्र के वियोग से दुःखी हो मुर्छित हो गई । पीछे सावधान
रुदन करती हुई विचारने लगी कि अवश्य मेरे पुत्र को
श निकाला दिलाने वाली मेरी सौत मालती का ही यह
ाम है । ऐसा सोच शोक पूर्ण हृदय से दिन व्यतीत
रने लगी ।

कुमार वहाँ से निकल जंगल की तरफ चला । वहाँ एक
के साथ युद्ध हुवा । इस में पल्लिपति को जीत कुमार

एक दिन उसी नगर से समुद्रदत्त सेठ अनेक वस्तुएँ लेकर वाणारसी नगरी में व्यापार करने गया । कुछ दिनों में सेठ ने नगर में विविध प्रकार के किराने का व्यापार कर खूब धन उपार्जन किया । एक दिन वह सेठ राजसभा में राजा को भेंट देने गया । वहां प्रसंगवश बातचीत करते हुए राजा विजयसेन के सामने अपने नगर में रहनेवाले पुरन्दरकुमार की प्रशंसा की । यह सुन राजा को अत्यन्त हर्ष हुआ । क्योंकि कुमार के जाने के कुछ दिनों बाद राजा को मालूम हो गया कि यह सब नाटक मालती राणी का था और कुमार निर्दोष है । ऐसा मालूम होने पर बिना कारण कुमार को देश निकाला देने से राजा को बहुत दुःख था । सेठ के द्वारा कुमार का वृतान्त सुन तुरन्त राजा ने कुमार को बुलाने के लिये पत्र लिखकर आदमी को नन्दीपुर भेजा ।

राजा का पत्र लेकर आदमी थोड़े दिनों में नंदीपुर पहुँचा और राजा का दिया हुआ पत्र कुमार को दिया । कुमार पिता के पत्र को पढ़कर बहुत प्रसन्न हुआ । पिता ने शीघ्र आने को लिखा इसलिए पुरन्दरकुमार अपने श्वसुर की आज्ञा ले पत्नि सहित विद्या के प्रभाव से दिव्य विमान बना उसमें बैठ मार्ग में आने वाले तीर्थों की भावपूर्वक यात्रा करता हुआ पिता की राजधानी वाणारसी नगरी में आया । राजा ने कुमार का उत्सव सहित नगर प्रवेश कराया । कुमार ने विनयपूर्वक माता पिता को नमस्कार किया । मंजुश्री ने

एक दिन उसी नगर से समुद्रदत्त सेठ अनेक वस्तुएँ लेकर वाणारसी नगरी में व्यापार करने गया। कुछ दिनों में सेठ ने नगर में विविध प्रकार के किराने का व्यापार कर खूब धन उपार्जन किया। एक दिन वह सेठ राजसभा में राजा को भेंट देने गया। वहां प्रसंगवश बातचीत करते हुए राजा विजयसेन के सामने अपने नगर में रहनेवाले पुरन्दरकुमार की प्रशंसा की। यह सुन राजा को अत्यन्त हर्ष हुआ। क्योंकि कुमार के जाने के कुछ दिनों बाद राजा को मालूम हो गया कि यह सब नाटक मालती राणी का था और कुमार निर्दोष है। ऐसा मालूम होने पर बिना कारण कुमार को देश निकाला देने से राजा को बहुत दुःख था। सेठ के द्वारा कुमार का वृतान्त सुन तुरन्त राजा ने कुमार को बुलाने के लिये पत्र लिखकर आदमी को नन्दीपुर भेजा।

राजा का पत्र लेकर आदमी थोड़े दिनों में नंदीपुर पहुँचा और राजा का दिया हुआ पत्र कुमार को दिया। कुमार पिता के पत्र को पढ़कर बहुत प्रसन्न हुआ। पिता ने शीघ्र आने को लिखा इसलिए पुरन्दरकुमार अपने श्वसुर की आज्ञा से पत्नि सहित विद्या के प्रभाव से दिव्य विमान बना उसमें बैठ मार्ग में आने वाले तीर्थों की भावपूर्वक यात्रा करता हुआ पिता की राजधानी वाणारसी नगरी में आया। राजा ने कुमार का उत्सव सहित नगर प्रवेश कराया। कुमार ने विनयपूर्वक माता पिता को नमस्कार किया, [illegible] ने

ना सास-श्वसुर को विनयपूर्वक नमस्कार किया। पुत्र वधु और पुत्र की ऋद्धि को देख माता-पिता को बहुत आनन्द हुआ। पीछे राजा ने बड़े ठाठ बाट से कुमार को राज्यासन पर आरूढ कर स्वयं ने श्रीमलयप्रभाचार्य से चारित्र ग्रहण किया।

पुरन्दर कुमार न्याययुक्त प्रजा का पालन करते हुए विद्या के प्रभाव से अनेक गर्विष्ट राजाओं को आधीन कर, जगह २ मनोहर जिनालय बनाकर, भावपूर्वक वीतराग की सेवा भक्ति करता हुआ सुखपूर्वक दिन व्यतीत करने लगा।

इस प्रकार बहुत समय तक राजसुख भोगने पर शरीर का तेज और बल क्षीण करनेवाले बुढ़ापे को आया जानकर बंधुमति से उत्पन्न राजकुमार जयन्त को राज्यासन पर स्थापित कर पाँच सौ राजाओं के साथ उत्साह पूर्वक अपने पिता के पास दीक्षा ली और बन्धुमति ने भी चारित्र लिया। पुरन्दर मुनि के विधि पूर्वक ग्यारह अंग का अध्ययन कर गुरु से बीस स्थानक की महिमा सुन श्रीसंघ की भक्ति करने का कठिन अभिग्रह लिया। फिर निरन्तर यथोचित्त श्रीसंघ की भक्ति भावपूर्वक करने लगा। एकबार किसी नगर से श्रीसिद्धगिरी की यात्रा करने के लिए संघ निकला। उसके साथ पुरन्दर

[illegible] हुआ संघ के मनुष्यों ने देखा । इस प्रकार दोनों प्रकार के संकट से दुःखी हो संघ के मनुष्य [illegible] श्री [illegible] आचार्य को नमस्कार कर कहने लगे—हे प्रभु ! आप कृपा कर [illegible] पड़े हुए संघ के कष्ट को दूर करो। तब आचार्य महाराज ने कहा कि तुम [illegible] लब्धियों से युक्त पुरन्दर मुनि को विनंति करो । वह अपनी लब्धियों से संघ के उपद्रव को दूर करेंगे । आचार्य महाराज के कहने से सब पुरन्दर मुनि से विनंति करने लगे ।

श्रीसंघ की विनंति स्वीकार कर गुरु महाराज की आज्ञा से राजर्षि मुनि ने अपनी लब्धि के प्रभाव से संघ में सुवर्ण की वृष्टि की । उसमें से सब आदमियों ने जितना चाहिए उतना सोना ले लिया । लूटने आने वाले चोरों के समूह को रास्ते में ही स्थंभित कर दिया जिससे वे आगे पीछे चलने में असमर्थ हो गये । धन प्राप्त हो जाने से पास के गाँव से भोजन की व्यवस्था कर संघ आगे यात्रा करता करता तीर्थ के पास पहुँचा । मार्ग में स्थंभित हुए चोरों को प्रतिबोध दे मुक्त किया । इस प्रकार श्री संघ को पुरन्दर मुनि ने उपद्रव रहित किया । यह जान इन्द्र आचार्य महाराज के पास आ प्रगट हो नमस्कार कर बोला—हे करुणा समुद्र ! संघ को संकट में डालने का काम मेरा ही था और यह मैंने पुरन्दर मुनि की परीक्षा लेने के लिए किया था इसलिये आप मुझे क्षमा करें । [illegible]के सिवा

आप यह बतावें कि श्रीसंघ की भक्ति करने से इन मुनि ने कौनसा पुण्य उपार्जन किया ? यह सुन आचार्य महाराज बोले हे सुरेश ! इस मुनि ने संघ की भक्ति करने से त्रैलोक्यपूज्य जिन नाम कर्म उपार्जन किया है । इस प्रकार श्रीसंघ की भक्ति का फल सुन देवेन्द्र मुनि के गुणों की प्रशंसा कर अपने स्थान को गये । राजर्षिमुनि जीवन पर्यन्त सतरहवें स्थानक को भली प्रकार आराधन कर अन्त में महाशुक्र देवलोक में देवता हुए वहाँ से चवकर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर होंगे और बंधुमति का जीव उनका प्रथम गणधर होगा ।

अठारहवीं कथा

राजा सागरचन्द्र

जो अठारहवें अपूर्व श्रुत पद आराधन से तीर्थङ्कर हुवे

... क्षेत्र में पुष्पपुर नामक विशाल नगर था ।

छाया में आकर पके हुए आम्र के फल तोड़ खाने लगा। दिन से भूखे होने के कारण कुमार ने आनन्द से वे फल खा खाते २ विचारने लगा कि कहाँ मेरी सुख से पूर्ण राजध और कहाँ यह अपरचित उजाड़ स्थान? कर्म की गति वि है। कुमार मन में इस प्रकार सोचता है इतने में उसकी एक वृक्ष की शाखा पर पड़ी। वहाँ रस्सी बाँध गले में फ खाने की तैयारी करती हुई सौंदर्यवान सुन्दरी को दुःखी ह से इस प्रकार बोलती हुई सुना! हे सब वन देवताओं! आ में रहने वाले ज्योतिषी देवों! आप सब मेरी विनीत एक सुनो। मैं इस जन्म में तो सागरचन्द्रपति को प्र नहीं कर सकी परन्तु पुनर्जन्म में तो मुझे सागरचद्र से ज मिलाना। अपना नाम सुन विस्मित हो कुमार उत्सा सुन्दरी के पास आकर फंदे को काट बोला। हे सुन्द अज्ञान मनुष्य की तरह तू आत्मघात कर महान् पाप भागी किस दुःख से होती है!

कुमार के वचन सुन वह सुन्दरी अपराधी की तरह ला और शर्म से बिना उत्तर दिये नीचा मुंह कर शोक ग्रस्त खड़ी रही। कुमार ने पुनः पूछा। सुन्दरी! बोलती क्यों न क्या अपना वृत्तान्त बताने में कोई आपत्ति है? यदि यह है तो मैं विशेष आग्रह नहीं करूँगा। क्या तुझे अपने स पर जाना है? चल तुझे निर्विघ्न ले चलूँ। कुमार यह क

गा में जाकर पके हुए आम के फल तोड़ खाने लगा। सात
दिन से भूखे होने के कारण कुमार ने आनन्द से वे फल खाये।
खाते २ विचारने लगा कि कहाँ मेरी सुख से पूर्ण राजधानी
और कहाँ यह अपरचित उजाड़ स्थान? कर्म की गति विचित्र
है। कुमार मन में इस प्रकार सोचता है इतने में उसकी दृष्टि
एक वृक्ष की शाखा पर पड़ी। वहाँ रस्सा बांध गले में फाँसी
खाने की तैयारी करती हुई सौंदर्यवान सुन्दरी को दुःखी हृदय
से इस प्रकार बोलती हुई सुना। हे सब वन देवताओं! आकाश
में रहने वाले ज्योतिषी देवों! आप सब मेरी विनीत एक चित्त
से सुनो। मैं इस जन्म में तो सागरचन्द्रपति को प्राप्त
नहीं कर सकी परन्तु पुनर्जन्म में तो मुझे सागरचद्र से जरूर
मिलाना। अपना नाम सुन विस्मित हो कुमार उत्साह से
सुन्दरी के पास आकर फंदे को काट बोला। हे सुन्दरी!
अज्ञान मनुष्य की तरह तू आत्मघात कर महान् पाप की
भागी किस दुःख से होती है?

कुमार के वचन सुन वह सुन्दरी अपराधी की तरह लाचार
और शर्म से बिना उत्तर दिये नीचा मुंह कर शोक ग्रस्त हो
खड़ी रही। कुमार ने पुनः पूछा। सुन्दरी! बोलती क्यों नहीं
क्या अपना वृत्तान्त बताने में कोई आपत्ति है? यदि यह ठीक
है तो मैं विशेष आग्रह नहीं करूँगा। क्या तुझे अपने स्थान
पर जाना है? चल तुझे निर्विघ्न ले चलूँ। कुमार यह कहता
है इतने में कोई एक विद्याधर वहाँ पहुँचा और बोला

हे पराक्रमी पुरुष ! मैं इस कन्या का वृत्तान्त कहता हूँ, सुनो

इस अमरद्वीप में सुरपुर नगर के भुवनभानु राजा की चंद्रानना राणी से उत्पन्न पुत्री यह हेममाला है। यह अमृतचंद राजा के पुत्र सागरचंन्द्र के सदगुणों को सुन उस पर आसक्त हो गई है। एक दिन यह अपनी सखियों सहित उद्यान में क्रीड़ा करने गई वहाँ दुरात्मा सुरसेन विद्याधर ने उसका हरण किया उससे अमित तेज विद्याधर ने द्वन्द युद्ध कर उस पापी का नाश कर अपने घर राजकुमारी को ले गया। इच्छित पति के नहीं मिलने से आज मरने की इच्छा से यहाँ आकर आत्मघात करती थी। हे कुमार तुमने इसे बचाया है। इस प्रकार इसका वृत्तान्त है। अब कृपा कर बताओ कि आप कौन हो ?

विद्याधर के मुख से हकीकत सुन अपनी प्रशंसा अपने मुख से करना ठीक नहीं समझ कुमार मौन रहा। तब हेममाला बिचारने लगी कि कदाचित यही सागरचंन्द्र कुमार तो नहीं है। क्योंकि रूप गुण में उसके समान मालुम होता है। कुमारी यह विचार करती है इतने में विद्याधरों का राजा अमिततेज विद्याधर वहाँ आ पहुँचा और बोला। हे मित्र ! यह राजकुमार अपनी प्रशंसा अपने मुँह से नहीं करता। मैं इसकी पहिचान बताता हूँ।

मैं नदीश्वर द्वीप में शाश्वते जिन की वंदना कर पीछा आता था तब मार्ग में मलयपुर नगर में इस परोपकारी गुणा-कर अमृतचँद नृपति के कुमार सागरचँद को देखा था। फि-

कारण से अथवा इस कुमारी के पुण्य से यह राजकुमार इस अरण्य में आया है । इसलिए हे मित्र भुवनभानु तुम्हारी पुत्री का व्याह इसके साथ करना ठीक ही है । इस पर पाठक गण समझ गये होंगे कि प्रथम आया हुवा विद्याधर हेममाला का पिता भुवनभानु था और पाछे से आया वह हेममाला को दुष्ट विद्याधर के पास से छुड़ाने वाला अमिततेज था । अपने मित्र के द्वारा अपरिचित पुरुष की प्रशंसा और परिचय मिलने से भुवनभानु बहुत प्रसन्न हुआ । पीछे कुमार, पुत्री और अमित तेज को अपने नगर में ले गया । वहाँ बड़े हर्ष से उत्साहपूर्वक हेममाला का पाणीग्रहण सागरचन्द्र के साथ किया । सागरचन्द्र हेममाला के साथ आनन्दपूर्वक सुख भोगता हुआ श्वसुर के दिये दिव्य भुवन समान महल में अपने दिन आनन्द में व्यतीत करने लगा ।

एक दिन महल में रात्रि को कुमार निश्चितता से सो रहा था, इतने में पूर्व भव के वैरी देव ने द्वेष से उसे वहाँ से उठा कर ऐसे पर्वत पर फेंका जहाँ अनेक शिकारी पशु रहते थे । परन्तु पुण्य प्रभाव से वह पर्वत पर न गिरकर किसी सरोवर में गिरा । वहाँ से तैरता २ सूर्योदय होते २ बाहर निकला ।

थोड़ी देर विश्राम ले जंगल में भ्रमण करता हुवा विचारने लगा कि देखो अभी एक दुःख का अन्त नहीं हुवा और दुसरा दुःख सामने आ गया । कर्म की बड़ी विचित्र गति है । वज्र

उस सुन्दरी के अचानक ऐसे वचन सुन आश्चर्य से कुमार गम्भीर शब्द से बोला— हे सुन्दरी ! इस पिशाच को मृत्यु से बचानेवाली तुम कौन हो ?

तब सुन्दरी ने उत्तर दिया, वीरकुमार, मैं कौन हूँ, सो सुनो। कुशवर्धनपुर नगर के कमलचन्द्रराजा की समरकान्ता राणी से उत्पन्न भुवनकांता नामक की पुत्री थी। उसने यौवन अवस्था में पहुँचने पर सागरचन्द्र कुमार के गुणों की प्रशंसा सुनी, इसलिए वह कुमार पर आसक्त हो निरन्तर उसी का स्मरण करने लगी। एक दिन शैलेशनगर के सुदर्शन राजा के समरविजय नाम के कुमार ने भुवनकान्ता का हरण कर इस वन में रखी। इसके बाद उसे किसी तरह खबर हुई कि सागरचन्द्र इसी मार्ग में अकेला चला आता है। ऐसा जान उसने आपके साथ युद्ध किया और परिमाण क्या हुआ यह तो आप जानते हैं।

कुमार ने कहा, हाँ यह तो मैं जानता हूँ परन्तु तुम कौन हो, यह क्यों नहीं बताती।

[illegible] आनंदित होती हुई [illegible]
[illegible] भुवनकान्ता हूँ जो निरन्तर [illegible]
[illegible]

भुवनकान्ता के कहने से समरविजय को कुमार ने अपने हाथों से खड़ा किया। भुवनकान्ता ने उसके प्राण बचाये ऐसा जानकर समरविजय वैरभाव छोड़ मित्र होगया। पीछे कुमार तथा भुवनकान्ता को अपने नगर में आग्रहपूर्वक लेगया। वहाँ बड़े उत्सव सहित सागरचंद ने भुवनकान्ता का पाणिग्रहण किया। पीछे वहाँ से रथ में बैठ प्रिया सहित अपने नगर को रवाना हुवा। मार्ग में जाते हुए अरण्य में प्रकाश से देदिप्य मान सुन्दर महल देखा। निर्जन स्थान में ऐसा सुन्दर महल देख कुमार को वहाँ जाकर महल देखने की इच्छा हुई। इस-लिये प्रिया को रथ में छोड़ खुद अकेला उस महल को देखने गया। महल के नजदीक सदर दरवाजे पर जाकर खड़ा रहा। वहाँ कोई आदमी तो नहीं था परन्तु ऊपर के भाग में वाजित्र युक्त मधुर संगीतालाप की मिष्ट ध्वनि सुनाई दी। इस आकर्षण से कुमार निर्भय हो महल में चढ़ गया। महल के दूसरे खंड में जाकर खड़ा रहा तो वहाँ किन्नरी समान कंठ से वीणा आदि वाजित्रों सहित संगीत करती पाँच दिव्य कन्याओं को देखा। कुमार को देख कन्याएं खड़ी हो विनय सहित आदरपूर्वक बुलाकर बैठने को आसन दिया। पीछे उनमें से सबसे बड़ी कन्या दोनों हाथ जोड़ विनय सहित बोली—देवांशी पुरुष! आप कौन हो; कहाँ रहते हो और कहाँ से आये हो कृपा कर बताओ।

नगर बाहर सूर्य उद्यान में [illegible] को वंदन करने लगे और अनन्तज्ञान को धारण करनेवाले [illegible] मुनि पधारे हैं।

केवली भगवान के आने का सुनना मिलने से राजा कुमार सहित वंदना करने गया। विनय सहित तीन प्रदक्षिणा दे राजा और कुमार उचित पर स्थान बैठ गये। पीछे गुरु महाराज धर्म देशना देने लगे।

> लक्ष्मी वेश्मनि भारती च वदने शौर्यं च दोष्णोर्युगे
> त्यागः पाणितले सुधीश्च हृदये सौभाग्यशोभा तनौ।
> कीर्तिर्दिक्षु सपक्षता गुणिजने यस्माद् भवेदंगिनां
> सोऽयं वांछित मंगलावलि कृते धर्मः समासेव्यताम् ॥१॥

अर्थ—हे भव्यजनो ! जिस धर्म से घर में लक्ष्मी, मुख में सरस्वती, दोनों भुजाओं में शौर्य, हाथों में दान, हृदय में सुन्दर बुद्धि, शरीर में शोभाग्य शोभा, दिशाओं में कीर्ति और गुणवान पुरुषों में पक्षपात होता है ऐसे इच्छित मंगलमाला को देने वाले धर्म का सेवन करो।

और फिर कहा है कि—

> पूआ जिणंदं सुरइ वएसु, जुत्तो अ सामाइअपोसहंमी।
> दाणं सुपत्तेनमणं सुतीत्थे, सुसाहुसेवा सिवलोय मग्गो ॥१॥

अर्थ—जिनेश्वर की पूजा, व्रतों में प्रेम, सामायिक पौषध से युक्त, सुपात्र को दान, सुतीर्थ की वंदना और सुसाधु की सेवा यह सब शिवगमन के मार्ग हैं।

इस प्रकार गुरु मुख से देशना सुन, अवसर देख राजा
ा-हे प्रभु! मेरे कुमार का किसने और किस कारण से
ा किया आप कृपाकर बताइए।

गुरु ने कहा हे राजन्, पूर्व विदेह क्षेत्र में एक नगर में दो
ई स्नेहपूर्वक रहते थे। उनमें बड़े भाई की स्त्री अपने पति
बहुत प्रेम करती थी। चाहे जैसा काम हो फिर भी वह उसे
र नहीं जाने देती। ऐसा दृढ़ स्नेह देख छोटे भाई ने एक
ोज परीक्षा लेने के लिये अपने बड़े भाई से कहा कि भाई!
आज किसी कार्यवश तुमको बाहर गाँव जाए बिना काम नहीं
चलेगा क्योंकि वह काम आपके बिना होगा नहीं। छोटे भाई
के कहने से बड़ा भाई स्त्री को बड़ी मुश्किल से समझाकर
जल्दी वापिस आने के लिए कह बाहर गाँव चला गया। बड़े
भाई के जाने के थोड़े दिन बाद छोटा भाई भाभी के पास आकर
शोकग्रस्त मुद्रा से बोला, भाभी! क्या कहूँ कहते मेरी जीभ
काम नहीं देती परन्तु कहे बिना काम भी नहीं चलता। मेरे भाई
की यहाँ से जाने के बाद अचानक तीव्र रोग से मृत्यु हो गई।

तीक्ष्ण तीर समान देवर के वचन सुन महीनाथ। ऐस
कह उसने दम तोड़ दिया। भाभी को प्राणहीन देख लघुभ्रा
अत्यंत पश्चाताप करने लगा कि सिर्फ परीक्षा करने के लि
मैंने ऐसी अघटित बात कही और इस बिचारी ने अपने प्राण
दिए। मैं बड़ा अभागी हूँ। अब बड़े भाई को क्या उत्तर दूं

नगर बाहर सूर्य उद्यान में सर्वलोक को पवित्र करने वाले अ
अनन्तज्ञान को धारण करनेवाले भुवनाववोध मुनि पधारे हैं
केवली भगवान के आने की सूचना मिलने से रा
कुमार सहित वंदना करने गया। विनय सहित तीन प्रदक्षि
दे राजा और कुमार उचित पर स्थान बैठ गये। पीछे गु
महाराज धर्म देशना देने लगे।

लक्ष्मी वेश्मनि भारती च वदने शौर्य च दोष्णोः
त्यागः पाणितले सुधीश्च हृदये सौभाग्यशोभा तनौ
कीर्तिर्दिक्षु सपक्षता गुणजने यस्माद् भवेदंगि
सोऽयं वांछित मंगलावलि कृते धर्मः समासेव्यताम्॥

अर्थ—हे भव्यजनो! जिस धर्म से घर में लक्ष्मी, मुख
सरस्वती, दोनों भुजाओं में शौर्य, हाथों में दान, हृदय
सुन्दर बुद्धि, शरीर में शोभाग्य शोभा, दिशाओं में कीर्ति
गुणवान पुरुषों में पक्षपात होता है ऐसे इच्छित मंगलमा
को देने वाले धर्म का सेवन करो।

और फिर कहा है कि—

पूआ जिणंद सुरइ वएसु, जुत्तो अ सामाइअपोसहंमी।
दाणं सुपत्तनमणं सुतीत्थे, सुसाहुसेवा सिवलोय मग्गो॥

अर्थ—जिनेश्वर की पूजा, व्रतों में प्रेम, सामायिक पौषध
युक्त, सुपात्र को दान, सुतीर्थ की वंदना और सुसाधु की से

यह जीव संसार में भ्रमण करते हुए कितनी कुल कोटी व योनि में भ्रमण कर दुख प्राप्त करता है? यह आप कृपाकर बताओ।

कुमार की प्रार्थना से गुरु महाराज बोले—हे कुमार! योनि व कुलकोटी का विचार पृथ्वीकायादिक के भेद से अनेक प्रकार का बतलाया है। फिर भी मैं तुझे संक्षेप में कहता हूँ सो एकाग्र चित्त से सुनना। पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय और वायुकाय इन प्रत्येक की सात २ लाख योनि हैं। सधारण वनस्पतिकाय की चौदह लाख योनि है, विगलेंद्रिय की दो २ लाख, नारकी, देव और तिर्यंच पंचेन्द्रिय की चार २ लाख योनि है, तथा मनुष्य की चौदह लाख योनि है। इस प्रकार सब मिलाकर चौरासी लाख योनि है। अब इन सबकी कुल कोटी कहता हूँ वह सुनना। बारह लाख कुल कोटी पृथ्वीकाय की, सात लाख कुल कोटी अपकाय की, तीन लाख कुल कोटी तेऊकाय की, सात लाख कुल कोटी वायुकाय की पच्चीस लाख कुल कोटी नारकी की, छब्बीस लाख कुल कोटी देव की, बारह लाख कुल कोटी मनुष्य की, अट्ठाइस लाख वनस्पति काय की, सात लाख बेइन्द्रिय की, आठ लाख तेइन्द्रिय की, नौ लाख चौरेन्द्रिय की, साढ़े बारह लाख जलचर की, बारह लाख खेचर की, दस लाख चतुष्पद की दस लाख उरपरी की नौ लाख भुजपरी की इसप्रकार कुल एक सौ साढ़े

कुछ दिनों बाद बड़ा भाई वापिस आया। तब छोटे भाई ने सब हाल सुनाकर अपने अपराध की क्षमा माँगी। बड़ा भाई स्त्री की मृत्यु के समाचार सुन अपनी स्त्री के स्नेह का स्मरण कर विलाप करने लगा। तब से भाई के साथ द्वेष रखने लगा। उसके साथ बोलना, खाना पीना आदि बंद कर निरन्तर शोकाकुल रहने लगा। अन्त में मोह से वैरागी हो तापसी दीक्षा ली और बालतस्या से कष्ट सहन कर वह असुरकुमार हुआ। छोटे भाई ने भी समकित युक्त शुद्ध संयम अंगीकार किया। गुरु के पास विनय पूर्वक ग्यारह अंग का अध्ययन कर निरतिचार से चारित्र का पालन करने लगा। एक बार तापसी दीक्षा ले असुरकुमार होनेवाले बड़े भाई के जीवने पूर्व वैर का स्मरण कर उस मुनि की हत्या की। मुनि मरकर दसवें प्राणान्त देवलोक में देवता हुआ। वहाँ से चवकर वह देव तेरा पुत्र सागरचंद्र हुआ। बड़े भाई का जीव असुरकुमार से चवकर अनेक भवों में भ्रमण कर मनुष्य जन्म प्राप्त कर पुनः तापसी दीक्षा ग्रहण कर व मरकर अग्निकुमार देव हुआ। उस पूर्व के वैर से कुमार को निंद्रा में से उठाकर समुद्र में फेंका वगैरह कष्ट दिए। परन्तु सागरचंद्र ने पूर्व में शुद्ध चरित्र का पालन किया उस पुण्य के प्रभाव से किसी भी जगह दुखी न हो सुख ही प्राप्त किया।

इस तरह गुरु मुख से देशना सुन कुमार को जाति स्मरण ज्ञान हुआ। इसलिए वह गुरु से पूछने लगा हे करुणा समुद्र

यह जीव संसार में भ्रमण करते हुए कितनी कुल कोटी वा योनि में भ्रमण कर दुख प्राप्त करता है ? यह आप कृपाकर बताओ।

कुमार की प्रार्थना से गुरु महाराज बोले—हे कुमार ! योनि व कुलकोटी का विचार पृथ्वीकायादिक के भेद से अनेक प्रकार का बतलाया है। फिर भी मैं तुझे संक्षेप में कहता हूं सो एकाग्र चित्त से सुनना। पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय और वायुकाय इन प्रत्येक की सात २ लाख योनि हैं। सधारण वनस्पतिकाय की चौदह लाख योनि हैं, विगलेंद्रिय की दो २ लाख, नारकी, देव और तिर्यंच पंचेन्द्रिय की चार २ लाख योनि है, तथा मनुष्य की चौदह लाख योनि है। इस प्रकार सब मिलाकर चौरासी लाख योनि है। अब इन सबकी कुल कोटी कहता हूँ वह सुनना। बारह लाख कुल कोटी पृथ्वीकाय की, सात लाख कुल कोटी अपकाय की, तीन लाख कुल कोटी तेऊकाय की, सात लाख कुल कोटी वायुकाय की पच्चीस लाख कुल कोटी नारकी की, छब्बीस लाख कुल कोटी देव की, बारह लाख कुल कोटी मनुष्य की, अटठाइस लाख वनस्पति काय की, सात लाख बेइन्द्रिय की, आठ लाख तेइन्द्रिय की, नौ लाख चौरेन्द्रिय की, साढे बारह लाख जलचर की, बारह लाख खेचर की, दस लाख चतुष्पद की दस लाख उरपरी की नौ लाख भुजपरी की इसप्रकार कुल एक सौ साढे सत्तानवें लाख कुलकोटी हैं। इनमें अनादिकाल से यह जीव मोह

सर्वहनें करने लगा । फिर भी मुनि जरा भी प्रमाद रहित ज्ञाना-
गार युक्त अध्ययन करते किसी भी प्रकार से मुनि को क्षोभ
हीं हुआ । तब देव ने प्रत्यक्ष हो मुनि को नमस्कार कर क्षमा
ांगी । फिर गुरु के पास जा वंदना कर पूछने लगा कि हे प्रभु !
न मुनि को अपूर्व श्रुताभ्यास से क्या फल मिलेगा ? गुरु ने कहा
-हे देव श्रुताभ्यास से तीर्थंकर पद को प्राप्त करेंगे । यह सुन देव
र्षित हो अपने स्थान को लौट गया । राजर्षि मुनि यावत जीवन
र्यन्त अठारहवें पद की आराधना कर विजय विमान में देव हुए
हाँ से चवकर महा विदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद प्राप्त कर मोक्ष
ायेंगे ।

उँगणीसवीं कथा

राजा रत्नचूड़
जो उँगणीसवीं श्रुतभक्ति पद
आराधन से तीर्थङ्कर हुवे

भरतक्षेत्र में विशाल एवम् मनोहर जिनालयों से विभू-
षित ताम्रलिप्त नगर था । वहाँ न्यायपूर्वक प्रजा का पालन
करनेवाला बुद्धिशाली रत्नशेखर राजा राज्य करता था ।
उसके शीलादि गुणों से विभुषित स्वरूपवान रत्नावली रानी
से रत्नचूड़ पुत्र हुआ । वह धीरे २ बड़ा होकर विविध कलाओं
का अभ्यास कर यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ । उसकी सुबुद्धि

मंत्री के पुत्र सुमति, श्रीपुंज सार्थवाह के पुत्र मदन, और श्रीधर सेठ के पुत्र गज के साथ मित्रता होगई। वे चारों मित्र हमेशा साथ ही रहकर उद्यानादि में क्रीडा किया करते थे। किसी समय वे चारों मित्र उद्यान में क्रीडा करने गये। वहाँ अनेक जीवों का उपकार करनेवाले सिद्दसूरि आचार्य को देखा। उन्हें देख चारों मित्र विनयपूर्वक वंदना कर गुरु के सन्मुख बैठ गये। इसलिए गुरु महाराज ने देशना देना आरम्भ किया। देशना देने के बाद अन्त में गुरुजी ने निम्न श्लोक कहा।

नरस्य पंचकं दास्यं, सौन्दर्ये सति किं पुनः।
बुद्धिः साहसी पुण्य प्रभाव सहिता पुनः॥

अर्थ–मनुष्य को उनका पँचक अर्थात् भाग्य दास बनाता है, उसमें भी जो सौंदर्यमान मनुष्य हो अथवा पुण्य प्रभाव से साहसी व बुद्धिमान हो तो फिर क्या कहना ?

यह श्लोक सुन चारों मित्र अपने भाग्य की परीक्षा करने के लिए बिना कोई वस्तु लिए तथा माता पिता की आज्ञा लिए बिना ही परदेश चले गये। मार्ग में जँगली फल खाते और नाना प्रकार की कथा वार्ता करते हुए दस दिन के बाद एक अटवी को पार कर एक नगर में पहुँचे। वहाँ सेठ पुत्र से तीनो मित्रों ने कहा कि आज यहां पर तू तेरी बुद्धि से भोजन करा। सेठ के पुत्र ने यह बात स्वीकार की और गाँव में गया। गाँव में जा देव दर्शन कर गाँव में घुमने लगा। इतने में उस दिन कोई पर्व होने से एक वृद्ध वणिक की दुकान पर

कहा कि आज सबको तुम भोजन कराओ। मित्रो की बात मान मंत्री पुत्र नगर में राजमंदिर की तरफ गया। वहां आकर खड़ा रहा इतने में राजसभा में एक आदमी एक श्लोक बोला और कहा कि जो कोई इस समस्या की पूर्ति करेगा उसे एक हजार मोहर मिलेगी। वह श्लोक इस प्रकार से था :-

को देवः शिवदायी, कश्चनः गुरुर्भवसेतुसमः।
को धर्मो विश्वहितः सर्वेषां किं प्रियं परमं ॥१॥

अर्थ—कल्याणकारी अथवा मुक्तिदाता देव कौनसा? संसाररूप समुद्र से पार करानेवाला गुरु कौन? विश्व की भला करनेवाला धर्म कौनसा? और सबको कौनसी वस्तु प्रिय है?

उक्त श्लोक सुन मंत्री पुत्र ने कहा—यह समस्या मैं पूर्ण करूँगा। राजसेवक ने कहा तो तुमको राजा की आज्ञानुसार एक हजार सोना मोहर मिलेगा। मंत्री पुत्र ने कहा 'चलो राजसभा में'। ऐसा कह राजसभा में आकर समस्यापूर्ति करते हुए कहा कि, मोक्ष को देनेवाले वीतराग श्री अरिहंत देव है, संसार समुद्र से पार करानेवाले परमोपकारी श्री निर्ग्रन्थ गुरु है, विश्व का भला करनेवाला जिनोक्त दयामूल धर्म है और सबको अपना जीव अत्यन्त प्यारा है।'

इस प्रकार यथार्थ समस्या को पूर्ण करने से राजा ने अत्यन्त प्रसन्न हो उसकी प्रशंसा की और एक हजार मोहर दी। मोहर ले मंत्री पुत्र आवश्यक सामग्री ले जाकर सबको भोजन कराया। इसके बाद वहां से रवाना हो चौथे दिन

कंचनपुर नगर में पहुँचे। वहाँ राजपुत्र रत्नचूड़ को मित्रों ने कहा कि आज तुम हम सबको भोजन कराओ। रत्नचूड़ ने यह स्वीकार किया। परन्तु भोजन प्राप्त करने के लिए कोई भी उपाय किये बिना नगर बाहर उद्यान में पुष्प पर आ...
हो सबके साथ विश्राम करने लगा। इतने में उस नगर
अपुत्रिये राजा की मृत्यु हो जाने से राज्य गद्दी पर बिठा
लिए प्रकट किये हुए पंच दिव्य घूमते २ जहाँ राजकुमार
था वहाँ आकर कुमार के पास ठहर गये। इस पर प्रधान
नगरनिवासियों ने मिल कर रत्नचूड़ कुमार को नगर का र
बनाया। वास्तव में पुण्यशाली को पुण्य प्रभाव से पग २
संपदा प्राप्त होती है। राजकुमार का उल्लासपूर्वक रा
भिषेक कर सिंहासन पर पर बिठाया। उस समय अनेक ग
को दान दे उनकी गरीबी दूर की। इससे सब रत्नचूड़ र
की प्रशंसा करने लगे। राजा प्रधान पुत्र को मुख्य मं
सार्थवाहक के पुत्र को कोषाधिपति और सेठ पुत्र को नग
पदवी दी और खुद न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा

अन्त में रत्नशेखर राजा को खबर हुई कि राजकुमार
कंचनपुर का राज्य प्राप्त हुआ है। इससे वह अत्यन्त ह
हुआ। पीछे पत्र लिख कुमार को मित्रों सहित अपने
बुलाया। पिता का पत्र पढ़ दूसरे प्रधानों को राज्य सौंप

मित्रों सहित अपने नगर गया। राजा ने बड़े ठाट से नगर प्रवेश कराया। कुमार ने विनयपूर्वक माता पिता के चरण स्पर्श किये। पीछे राजा ने रत्नचूड़ कुमार को राज दे गुरु के पास संयम लिया।

न्यापूर्वक राज्य करते हुए रत्नचूड़ के सोमेश्वर और सूरसेन दो पराक्रमी पुत्र हुए। जब वे यौवनावस्था में पहुचे तो राजा ने सामेश्वर को कंचनपुर का राज्य दिया और सूरसेन को ताम्रलिप्त नगर के राज्य सिंहासन पर युव राज पद पर स्थापित किया। इस प्रकार वह सुखपूर्वक दिन व्यतीत करने लगा।

एक दिन राजसभा में मिथ्याद्रष्टि पंडित आया। उसने अपने वेद पुरान स्मृति आदि शास्त्रों की प्रशंसा कर कहा कि ये सब संस्कृत भाषा में होने से मोक्ष को देनेवाले हैं और जिनागम को अवगणना कर कहा कि जिनागम प्राकृत भाषा में होने से प्राणियों को मोक्ष मार्ग बतानेवाले नहीं हैं। इस प्रकार जिनोक्त तत्व की अवगणना सुन राजा कुछ भी बोले बिना मौन बैठा रहा। उसी समय उद्यानपाल ने सूचना दी कि अनन्त ज्ञान को धारण करनेवाले अमरचँद्र मुनि नगर उद्यान में मुनि परिवार सहित पधारे हैं। केवली भगवान के आगमन को सुन रत्नचूड़ राजा हर्षपूर्वक अनेक मनुष्यों के साथ उस पण्डित को साथ ले गुरू वँदना करने गया। गुरू के पास आकर विनयपूर्वक तीन प्रदक्षिणा दे भावपूर्वक नमस्कार

र गुरू सन्मुख उचित स्थान पर बैठा। इसलिए गुरू ने देशना आरम्भ की।

'हे भव्यजनो! विशाल लक्ष्मी, सुन्दर रूप, विनयवंत पुत्रों का परिवार, उदारता, निर्मल बुद्धि उत्तम प्रकार के भोग सत्यवादिता, निर्मल शील का पालन, दयालुता, लज्जालुता, उत्तम कुल में जन्म और देवगुरु के प्रति शुद्ध भाव से अनन्य भक्ति वगैरह संस्कार का ही फल है। ऐसा समझ धर्म में रुचि रखो।

देशना श्रवण कर राजा बोला—हे भगवान! जिनेश्वर ने प्राकृत भाषा में आगमों की रचना क्यों की? गुरु ने कहा राजन! जिनेश्वर की वाणी सब समझ सकें ऐसी और अर्ध मागधीययुक्त होने से प्राकृत भाषा में रची है और दूसरा भी कारण यह है कि:—

बालस्त्रीमंदमूर्खाणाम् नृणाम् चारित्रकांक्षिणाम्।
अनुग्रहाय तत्वज्ञैः, सिद्धान्तः प्राकृत कृतः ॥१॥

अर्थ—चारित्र की आकांक्षा करनेवाला बालक, स्त्री, मंद बुद्धिवाला और मूर्ख जीवों के अनुग्रह के लिए तत्व के जानने वाले जिनेश्वर ने सिद्धान्त प्राकृत भाषा में बनाये हैं।

इतना कहने के बाद राजा का अभिप्राय जान केवली महाराज पूर्वोक्त मिथ्यादृष्टि पंडित से कहने लगे कि हे पंडित! यह समस्त सचराचर विश्व नित्य है या अनित्य? यदि नित्य है तो किस प्रकार नित्य है? यदि अनित्य है तो अनित्य किस

तरह है। गुरु के इतने से प्रश्न से पंडित स्तब्ध होगया। इसलिए वहाँ बैठे हुए सब लोग पंडित की हंसी करने लगे। इससे वह बहुत शर्मिन्दा हो नीचा मुंह कर बैठा रहा। पीछे पुनः केवली महाराज ने कहा कि जिनोक्त आगम का एक २ वाक्य अनंत अर्थ युक्त है, वह मिथ्या दृष्टि को बिलकुल अगोचर है, और सम्यक् दृष्टि को सुलभ है। अन्धकार को नाश करनेवाला जिस तरह दीपक है उसी प्रकार अज्ञान का नाश कर सम्यक् बोध देने वाला श्रुत आगम है। इसीलिए कहा है कि-

> मोहं धियो हरति कापथमुच्छिनत्ति,
> संवेगमुच्छ्रयति सत्प्रशमं तनोति।
> स्वर्गापवर्गपदवी मुदमातनोति,
> जैनं वचः श्रवणातः किमु नातनोति ॥१॥

अर्थ-- जो (श्रुतआगम) बुद्धि के मोह कोह को हरते हैं, कुत्सित मार्ग पाखंड का उच्छेद करते हैं, संवेग की वृद्धि करते हैं, श्रेष्ठ प्रशम का विस्तार करते हैं और स्वर्ग तथा मोक्ष सम्बन्धी हर्ष की वृद्धि करते हैं। श्रीजिन के वचनों का श्रवण करने से किस वस्तु का विस्तार नहीं होता अर्थात वह सर्व पदार्थों को देता है।

जो प्राणी भाव से आगम की भक्ति करता है, वह प्राणी जड़त्व, अंधत्व बुद्धि हीनता और दुर्गति को कभी प्राप्त नहीं करता और जो आगम की आशातना करता है वह प्राणी दुर्गति को प्राप्त करता है।

इस प्रकार श्रुत भक्ति की महिमा सुन राजा ने श्रुत करने का नियम लिया । कुछ समय तक गृहस्थाश्रम में ज्ञान और श्रुत ज्ञानी की द्रव्य तथा भाव से विधि सहित की । पीछे विशेष रूप से भक्ति करने की जिज्ञासा से ने ज्येष्ठ पुत्र सुरसेन को राज्य सुपुर्द कर संसाररूप बंधन काटने के लिए अनन्त ज्ञान को धारण करनेवाले अमरचंद्र के पास चारित्र ग्रहण किया । धीरे २ सत्तर भेद से संयम पालन करते हुए ग्यारह अंग का सूत्रार्थपूर्वक अध्ययन गीतार्थ हुए । श्रुत भक्ति के लिए नियम में विशेष दृढ़ हो श्रुतधरों की अन्नपानऔषधादि से निरन्तर उत्साह भक्ति करने लगे ।

इस प्रकार भक्ति करते कुछ दिन व्यतीत होने पर चार गुरु के साथ भारतिपुरपतन में आये । वहाँ ईशान लोकाधिपति राजर्षि मुनि की परीक्षा करने के लिये विप्र रूप धारण कर मुनि के पास आकर कहने लगा कि हे मु निरस प्राकृत भाषा में लिखे जिनागम को पढ़ने में अत्यंत होता है इसलिए उन्हें छोड़ संस्कृत भाषा जो कि देव कहलाती है उसमें लिखे आगमों को पढ़ो जिससे आत्मा वास्तविक कल्याण हो ।

समता सिंधु राजर्षि मुनि विप्र के वचन सुन मधुर व से बोले—विप्र ! व्यर्थ में जिनागम की निंदा कर पाप का भागी बनता है ? जिनोक्त आगम की निंदा करने

इस प्रकार श्रुत भक्ति की महिमा सुन राजा ने श्रुतभक्ति करने का नियम लिया। कुछ समय तक गृहस्थाश्रम में श्रुत ज्ञान और श्रुत ज्ञानी की द्रव्य तथा भाव से विधि सहित भक्ति की। पीछे विशेष रूप से भक्ति करने की जिज्ञासा से राजा ने ज्येष्ठ पुत्र सुरसेन को राज्य सुपुर्द कर सँसाररुप बँधन को काटने के लिए अनन्त ज्ञान को धारण करनेवाले अमरचंद्र मुनि के पास चारित्र ग्रहण किया। धीरे २ सत्तर भेद से संयम का पालन करते हुए ग्यारह अंग का सुत्रार्थपूर्वक अध्ययन कर गीतार्थ हुए। श्रुत भक्ति के लिए नियम में विशेष दृढ़ चित्त हो श्रुतधरों की अन्नपानऔषधादि से निरन्तर उत्साहपूर्वक भक्ति करने लगे।

इस प्रकार भक्ति करते कुछ दिन व्यतीत होने पर एक बार गुरु के साथ भारतिपुरपतन में आये। वहाँ ईशानदेव-लोकाधिपति राजर्षि मुनि की परीक्षा करने के लिये विप्र का रूप धारण कर मुनि के पास आकर कहने लगा कि हे मुनि ! निरस प्राकृत भाषा में लिखे जिनागम को पढ़ने में अत्यंत कष्ट होता है इसलिए उन्हें छोड़ संस्कृत भाषा जो कि देवभाषा कहलाती है उसमें लिखे आगमों को पढ़ो जिससे आत्मा का वास्तविक कल्याण हो।

समता सिंधु राजर्षि मुनि विप्र के वचन सुन मधुर वाणी से बोले—विप्र ! व्यर्थ में जिनागम की निंदा कर क्यों पाप का भागी बनता है ? जिनोक्त आगम की निंदा करनेवाला

इस प्रकार श्रुत भक्ति की महिमा सुन राजा ने श्रुतभक्ति करने का नियम लिया। कुछ समय तक गृहस्थाश्रम में श्रुत ज्ञान और श्रुत ज्ञानी की द्रव्य तथा भाव से विधि सहित भक्ति की। पीछे विशेष रूप से भक्ति करने की जिज्ञासा से राजा ने ज्येष्ठ पुत्र सुरसेन को राज्य सुपुर्द कर संसाररुप बँधन को काटने के लिए अनन्त ज्ञान को धारण करनेवाले अमरचंद मुनि के पास चारित्र ग्रहण किया। धीरे २ सत्तर भेद से समय का पालन करते हुए ग्यारह अंग का सूत्रार्थपूर्वक अध्ययन कर गीतार्थ हुए। श्रुत भक्ति के लिए नियम में विशेष दृढ़ चित्त हो श्रुतधरों की अन्नपानऔषधादि से निरन्तर उत्साहपूर्वक भक्ति करने लगे।

इस प्रकार भक्ति करते कुछ दिन व्यतीत होने पर एक बार गुरु के साथ भारतिपुरपंतन में आये। वहाँ ईशानदेव-लोकाधिपति राजर्षि मुनि की परीक्षा करने के लिये विप्र का रूप धारण कर मुनि के पास आकर कहने लगा कि हे मुनि! निरस प्राकृत भाषा में लिखे जिनागम को पढ़ने में अत्यंत कष्ट होता है इसलिए उन्हें छोड़ संस्कृत भाषा जो कि देवभाषा कहलाती है उसमें लिखे आगमों को पढ़ो जिससे आत्मा का वास्तविक कल्याण हो।

समता सिंधु राजर्षि मुनि विप्र के वचन सुन मधुर वाणी से बोले—विप्र! व्यर्थ में जिनागम की निंदा कर क्यों ता है? जिनोक्त आगम की निंदा करनेवाला

प्राणी अतिशय क्लिष्ट और तीव्र विपाकवाले कर्म बंधकर मूक और अज्ञानी होता है, हीन योनि में जन्म लेता है और दुर्गति में जाता है और वहाँ पूर्व कर्मवश अतिशय दुःख को भोगता है इसलिए कहता हूँ कि–

तित्थयर पवयण सुय, आयरियं गणहरं महड्ढियं ।
आसाएवो वहुसो, अनन्तसंसारिओ होइ ॥१॥

अर्थ–तीर्थंकर, प्रवचन, श्रुत, आचार्य, गणधर और महर्धिक की आशातना करनेवाला अनन्त संसारी होता है। महा मोहरूप अंधकार युक्त संसाररूप मार्ग में विचरण करने वाले प्राणियो को जिनागम दीपक तुल्य है। इसीलिए कहा है–

अन्धयारे दुरुत्तारे, घोरे संसार सागरे ।
एसोच महादीवो, लोआलोआवलोयणे ॥२॥
एसो नाहो अणाहारं, सव्व भूआण भावओ ।
भाववंधु इमोचेव, सव्व सुरकाण कारण ॥३॥

अर्थ–मोहरूप अंधकार से पूर्ण और दुस्तर भयंकर संसार समुद्र में लोकालोक को प्रगट करने में श्रुत महान् दीपक तुल्य है और निराधार जीवो का भाव से नाथ और भाव से बंधु तथा निश्चय सर्व सुख का कारण है।

इस प्रकार राजर्षि मुनि के श्रुत भक्तियुक्त अमृत तुल्य वचनो को श्रवण कर, ईशानेंद्र प्रसन्न हो प्रगट हुआ और मुनि को प्रदक्षिणा दे उनकी स्तुति करने लगा। पीछे इन्द्र गुरु महाराज के पास जाकर पूछने लगा कि हे प्रभु ! भक्ति पूर्वक

श्रुत की भक्ति करने से इन मुनि को क्या फल मिलेगा ! गुरु महाराज ने कहा देवेन्द्र ! यह मुनि श्रुत भक्ति के प्रभाव से आगे को भी पूज्य जिनपद को प्राप्त करेंगे । इस तरह आगम भक्ति के फल को जानकर देवेन्द्र गुरु तथा मुनि को पुनः भक्तिपूर्वक वंदन कर उनकी स्तुति कर अपने स्थान को लौट गया ।

राजर्षि मुनि निर्मल चारित्र का पालन कर श्रुत भक्तिपद का आराधन कर देवलोक हो इनके प्राणांत देवलोक में बीस सागरोपम के आयुष्य वाले देव हुए । वहां से चवकर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पदवी प्राप्त कर अनन्त आनन्दमय मोक्ष सुख को प्राप्त करेंगे ।

बीसवीं कथा

राजा मेरुप्रभ

जो बीसवें प्रवचन प्रभावना स्थनाक आराधना से तीर्थङ्कर हुवे

भरत क्षेत्र में सूर्यपुर नामका नगर था । वहां अरिदमन राजा राज्य करता था । उसके मदनसुन्दरी और रत्नमंजरी दो पटराणियां थीं । इन राणियों के मेरू प्रभ और महासेन दो

अभी थोड़ी देर में इसे मारने के लिए इस की पाविष्टा माता के आदमी आवेंगे।

यह वृत्तान्त श्रवण कर वहाँ बैठे हुए धनेश्वर शेठ ने अपने घर के भूमिगृह में उसे छिपा दिया। दोपहर बाद गुरु के कहे माफिक एक दल नगर बाहर आ पहुंचा। उनमें से कुछ लोग नगर में मेरु प्रभ को ढुंढ़ने लगे। परन्तु किसी जगह उसका पता नहीं लगा। इसलिए वे सब निराश हो चले गए।

सेना के जाने के बाद कुमार बाहर निकल गुरु के पास आकर बोला! हे करुणासिंधु! आपने ही आज जीवित दान दिया है। हे दया-निधि! मै किस तरह आपके ऋण से मुक्त होऊं यह मुझे कहो।

गुरु ने कहा—महाभाग्य सम्यग्दर्शन युक्त जिनोक्त धर्म का तू भाव पूर्वक पालन कर। पुण्य कार्य कर जिनोक्त धर्म की प्रभावना बढ़े वैसा काम कर। इसी से तू अन्त मे अपार सुख को भोगने वाला होगा।

गुरु वचन श्रवण कर कुमार ने सम्यग्दर्शन युक्त श्रावक धर्म अंगीकार किया। पीछे उसी नगर में गुप्त रीति से रह धर्म की आराधना करता हुआ दिन व्यतीत करने लगा।

सूर्यपुर नगर में कुमार के एका एक गुम हो जाने से राजा अरिदमन बहुत शोकाकुल रहने लगा। चारों दिशाओं में कुमार को ढूंढ़ने के लिए मनुष्य निरन्तरघुमने लगे। कुछ दिन बाद राजा को पता चला कि कुमार शांतिपुर नगर में है।

इसलिए पत्र लिखकर आदमी भेजा कि पत्र पढ़ते ही तुरन्त यहाँ आ जावे। पिता का पत्र पढ़कर कुमार तुरन्त राजा के पास आया। कुमार को देख राजा बोला बेटा! तुम एकाएक इस तरह चुपचाप क्यों चले गये? क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया था? अथवा कोई बात तेरे हृदय में चुभ गई थी?

कुमार ने कहा पिताजी! मेरे मन में कोई बात नहीं थी और न किसी ने मेरा अपमान किया। सिर्फ देशान्तर देखने की इच्छा से चला गया था। क्योंकि पूछने पर आप मुझे जाने नहीं देते। इस प्रकार राजा के मन का समाधान किया परन्तु पूर्व की सत्य बात कह सौतेली माता के दुष्ट आचरण को नहीं बताया। देखो सज्जनता।

राजा ने कहा बेटा! तुम्हें मेरे बुढ़ापे की तरफ तो देखना था? तू आगया यही बहुत आनन्द की बात है। अब तू राज्य ग्रहण कर ताकि मैं संसार सिंधु को पार करने के लिए चारित्र अंगीकार कर सकूँ।

कुमार ने कहा पिताजी! ऐसा कौन हीन भागी होगा जो धर्म साधना में बाधा डाले। आप शौक से चारित्र अंगीकार करो और यह राज्यभार मेरे भाई महासेन को दे दो। मैं उसकी सेवा में रहूँगा। मुझे राज्य तृष्णाजरा भी नहीं है।

राजा ने कहा कुमार! ऐसा नहीं हो सकता। जो योग्य होता है उसे ही राज्य दिया जाता है। तुझे राज्य देने से तेरी

सौतेली माता नाराज हो तो इसकी चिन्ता करने की जरूरत नहीं। मेरी इस आज्ञा का तो पालन करना ही पड़ेगा।

फिर राजा ने मेरुप्रभ कुमार को राज्य भार दे और महासेन को युवराज पदवी दे चारित्र ग्रहण कर उसका पालन कर अन्त में शुभ ध्यान से काल कर स्वर्ग में गये।

मेरुप्रभ राजा ने न्याय युक्त राज्य करते हुए कुरु राजा की पुत्री त्रैलोक्यसुन्दरी के साथ व्याह किया। सुख भोगते हुए रानी से एक पुत्र और पुत्री हुए। मेरुप्रभ को सुखरूप लीला देख रत्नमंजरी निरन्तर हृदय में द्वेष कर उसका नाश करने का प्रयत्न करने लगी। विविध प्रकार के तर्क वितर्क करते रत्नमंजरी ने एक युक्ति ढूंढ निकाली। हमेशा मेरुप्रभा राजा के लिए पुष्प की माला, ले जाने वाली माली को बुलाकर कहा कि यदि तू मेरी बताई हुई युक्ति से मेरुप्रभ को मार डालेगा तो मै तुझे मुँह माँगा इनाम दूंगी।

माली ने कहा महाराणी! मेरे से यह काम नहीं होगा क्योंकि यह बात राजा को मालूम हो जाय तो मेरे सारे कुटुम्ब का नाश हो जायगा। माताजी! मुझे आपकी मोहरें नही चाहिए।

माली को डरता देख रत्नमंजरी ने सुवर्ण मोहरों की थैली को खाली कर उसके सामने ढेर कर कहा– ले इतने धन से तेरी सारी जिंदगी सुख से व्यतीत होगी। तेरे मन में बात खुल जाने का जो भय है वह मै जानती हूँ

परन्तु मेरे बताए उपाय से वह क्षण भर में प्राण रहित हो जावेगा और किसने मारा इसको किसी को खबर नहीं गो। देख यह तालपुट विष की शीशी है। इसका जरा स्पर्श होने से मनुष्य प्राणरहित हो जाता है। सुन। राजा लिए तू हमेशा पुष्प माला ले जाता है, उस माला के एक पुष्प शीशी में से दो बूंद डालना पीछे वह माला राजा को देना। तुझे इतना ही काम करना है। बोल इस प्रकार करने से ई जान सकेगा कि यह काम माली का है।

सुवर्ण मोहरों के ढेर को देख घोर कृत्य करने को माली मन ललचाया। बिचारा गरीब माली रानी के पाप पूर्ण जाल फंस नमकहराम बन बोला—महारानीजी! क्या इतनी ही मोहरें देंगी? रानी ने कहा क्या इतनी मोहरें कम रहेंगी। यह कह री थैली देकर कहा—काम पुर्ण होने पर और इनाम दूँगी।

रानी की युक्ति सफल हुई। मालीप्रस्थ हो राणी को त मान गया। हमेशा के नियामानुसार दूसरे दिन ली ने सुन्दर सुगन्धित पुष्पों की माला बनाकर दरबार में कर महाराज को दे पीछे अपने घर आया। उस समय राजा पने छोटे भाई और दूसरे सरदारों के साथ बैठा वार्तालाप र रहा था। माला को स्नेह से लघु भाई के गले में डाल दी। ड़ी देर में पुष्प में रखे विष का स्पर्श होते ही महासेन कुमार क्ष की शाखा जैसे टूटती है उस प्रकार पृथ्वी पर बेसुध अवस्था गिर पड़ा। अचानक यह घटना देखकर सर्व राजकुटम्ब और

राजमहल वहाँ इकट्ठा हो गया । रानी रत्नमंजरी ने अपने पुत्र के गले में पुष्पमाला देख तुरन्त सावधान हो गई कि मेरा पाप का कर्म मुझे ही खा गया । ऐसा समझ छाती कूटती रुदन करती हुई कहने लगी । हे देव ! तुने मेरे पर यह क्या जुल्म किया ? मैने तेरा क्या बिगाड़ा है ? अरे बेटा ! अब मैं कैसे जीवित रहूँगी ?

राणी वगैरह को विलाप करते देख मेरुप्रभ राजा महासेन की नाड़ी देख बोला—माताजी अभी घबराने की कोई बात नहीं है क्यों कि नाडी चलती है । अभी वैद्यों को बुलाकर भाई का उपचार करवाता हूँ । आप जरा शान्त हो जाओ । राजा की आज्ञा होते ही थोड़ी देर में अनेक वैद्य आगये परीक्षा करके कहा कि किसी ने कुमार पर विष का प्रयोग किया है । हमको जल्दी बुला लिया वह ठीक किया । अभी उपचार करने से ठीक हो जायँगे । ऐसा कह वैद्यों ने विरेचन वमनादि से विष दूरकर कुमार को होश में लाकर कहा कुमार के गले में जो पुष्प माला है उसी में विष मिला है । वैद्यों के कहने से तुरन्त माली को बुलाकर राजा ने धमकी दे कहा कि बोल इस माला में तुने क्या डाला है ?

माली ने कहा—महाराज इसमें सुगंधित फूल हैं और दूसरा क्या हो सकता है ।

राजा ने कहा—अरे धूर्त यह तो सबको दिखाई देता है । परन्तु इन पुष्पों में तुने क्या डाला है ? जो बात है वह सत्य कहेगा तो छोड़ दूंगा नहीं तो अभी मरवा डालूँगा ।

राजा के अभय वचन से माली ने निर्भय हो सत्य हकीकत कहने लगा। महाराज ! आपकी सौतेली माता रत्नमंजरी राणीजी ने आपको मारने के लिए मुझे दो सुवर्ण मोहरों की थैली दी। साथ में एक तालपुट विष की शीशी देकर कहा कि इसमें से दो बूंद पुष्प माला में यह माला तू राजा को देना और इससे राजा थोड़ी देर में यमलोक पहुच जायेंगे। मुझे अभागे ने सुवर्ण मोहरों के लोभ से यह भयंकर नीच काम किया है। हे कृपानाथ ! इस तरह जो सच बात थी वह मैंने आपको बतला दी है। अब आप जो ठीक समझे वैसा करें। वास्तव में तो मैं अपराधी हूँ।

माली की बात सुन राजा क्रोधित हो रत्नमंजरी से कहने लगा अरे नीच पापी मूर्ति संसार के क्षणिक पुद्गलिक सुखों में आसक्त हो पापपूर्ण राज्य लक्ष्मी के लोभ से मेरे को मारने वाली राक्षसणी ! तुझे धिक्कार है। जिस समय महाराज मौजूद थे उस समय यदि मैं तेरे पूर्व कृत्य बतला देता तो तेरी क्या दशा होती अरे मायावनी ! मैं तुझे क्या शिक्षा दू ? ऐसा कहते और विचार करते हुए राजा का चित्त विरक्त होने लगा इस लिए पुनः बोला—'माता इस में तेरा दोष नहीं है। तूने राज्य लक्ष्मी के लोभ से ही यह कृत्य किया है। विद्वान पुरुषों ने कहा है कि राज्य भोक्ताओं को अन्त में नरक मिलता है क्यों कि उसको प्राप्त करने में अनेक प्रकार के आचरण करने पड़ते हैं। जैसे २ वह प्राप्त होता वैसे २

एक बार मेरुप्रभाचार्य अनेक मुनियों सहित उग्र विहार करते हुए चित्रकूट नगर के समीप आकर ठहरे। आचार्य महाराज को आए जान नगर निवासियों ने आकर गुरु की वँदना कर देशना सुनने को बैठे। गुरु महाराज मधुर देशना से उपदेश देने लगे। उस समय एक यक्ष को भी गुरु महाराज की देशना श्रवण कर ज्ञान हुआ। उसने गुरु के सामने देव माया से विविध प्रकार का नृत्य किया। इससे आचार्य की प्रशंसा खूब बढ़ी। नगर में सब जगह यही बात होने लगी। यह प्रशंसा उस नगर के राजा जितारी के सुनने में आई। वह सामन्तादिकों के साथ गुरु महाराज की वंदना करने आया। वँदना कर उचित स्थान पर बैठा तब गुरु ने पुनः देशना शुरू की।

'हे भव्यजनो ! यह संसार समुद्र केवल दुःख से ही परी पूर्ण है। इसमें पड़े हुए प्राणी को धर्म के सिवाय कि

सहारा नही है जन्म जरा और मरणादि दुःखों से छूटकारा पाने के लिए धर्म के सिवाय कोई दूसरा उपाय नहीं है। यथार्थ तत्व को जाननेवालों ने धर्म दो प्रकार का बताया है एक देश से दूसरा सर्व से देश से गृहस्थ को उचित है। और सर्व से अणगार को। भावपूर्वक धर्म का सेवन करने से मनुष्य अन्त में मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त करता है। ऐसा समझ धर्म में रुचि रखो।

देशना श्रवण कर जितारी राजा को प्रतिबोध हुआ और श्रावक के बारह व्रत अँगीकार कर अनेक प्रकार से जिन शासन की प्रभावना की। बाद गुरु महाराज वहाँ से विहार कर ग्राम नगरादि में विचरते वेन्नापुर नगर में पधारे।

वहाँ नगर बाहर के उद्यान में लक्ष्मी देवी के मंदिर के पास ठहरे पीछे देशना आरम्भ की। उनकी देशना से वहाँ की लक्ष्मी देवी को समकित हुआ और गुरु के आगे सुवर्ण की वृष्टि की जिससे आचार्य महाराज की महिमा नगर में फैल गई। गुरु की ख्याति सुन उस नगर का अरिमर्दन राजा परिवार सहित गुरु की वंदना करने आया। उसे प्रति बोध देने गुरु महाराज ने अमृत समान देशना प्रारम्भ की।

अहो भव्यजनो! इस सँसार में दुःख से प्राप्त होने वाले मानव जन्म को प्राप्त कर उसे धर्म रहित प्रमाद से व्यर्थ मत खो। पूर्व पुण्यवशात् मनुष्य जन्म प्राप्त होने पर भी गरुमन्न

हुए साधुओं को कहीं भी गोचरी उपलब्ध नहीं हुई और साथ में सब उनकी निन्दना करने लगे। यह देख आचार्य महाराज ने विद्या मन्त्र के प्रभाव से निन्दना करने वाले बौद्धों को स्तंभित कर दिए। यह बात वहां के राजा हेमध्वज को मालूम हुई तो उसने जैनाचार्य को मारने के लिए सेना भेजी। सेना को आती देख सूरि – भक्त देवताओं ने समस्त सेना को चित्र के समान स्तम्भित कर दी और आकाशवाणी से कहा कि जो तुम सब को जीवित रहने की इच्छा हो तो आचार्य महाराज के पास जाकर अपने किए अपराध की क्षमा मांग जिनोक्त धर्म को अङ्गीकार करो।

यह आकाशवाणी सुन सब विस्मित हुए और गुरु के पास आकर नमस्कार किया और श्रावक धर्म अङ्गीकार किया। पीछे सब ने भक्ति पूर्वक गोचरी के लिए साधुओं को निमन्त्रित किया। फिर। सूरि जी की स्तुति करते हुए कहने लगे कि हे प्रभु! आपने हमको संसार समुद्र में डूबते हुए को बचाकर मिथ्यातत्व छुड़ाकर सम्यग् धर्म प्राप्त कराया है इसलिए हम आपके अत्यंत ऋणी है। इस तरह उस नगरी के राजा आदि नगर जनों को शुद्ध धर्म में आरूढ़ कर शासन की उन्नति कर आचार्य वहां से नागपुर नगर आये।

गुरु महाराज को आए जान सब नगर निवासी तथा राजा परिवार सहित वन्दना करने गये। राजादि नगरजनों को आए जान सूरीश्वर ने संसार रूप ताप से तृप्त हुए प्राणियों को मेघ की वृष्टि समान देशना आरम्भ की। गुरू की देशना

दर्शन मात्र से व्याधि रहित होगया । इसलिए उसने भावपूर्व श्रावक धर्म अंगीकार कर जिनशासन को खूब प्रभावना की ।

यहाँ से गुरु महाराज ने विहार कर भोगपुर नगर चातुर्मास किया । यहाँ ऐसा अभिग्रह किया कि इसी न में चार माह के अन्दर मद झरता राजा का पट्टहस्ति य मोदक वहरावे तो तप का पारणा करना अन्यथा नहीं । घे तपस्या के बिना कर्मों का नाश नहीं होता, यही समझक उपरोक्त घोर अभिग्रह लिया ।

अभिग्रह युक्त तपस्या करते दो माह व्यतीत हो गए फि भी अभिग्रह पूर्ण नही हुआ । फिर भी आचार्य महाराज ज भी विचलित नही हुए । पीछे अंतराय कर्म के क्षयोपशम से एव दिन राजा का पट्टहस्ति आलान स्तम्भ उखाड़ अपने लिए रख हुआ मोदक का थाल सून्ड से उठा नगर में मन्दोन्मत्त हो फिर लगा । फिरते २ वह हाथी अभिग्रह धारण करने वाले सू महाराज के समीप आकर खड़ा रहा और थाल के मोदक भक्ति भाव से वहराने लगा । सूरीश्वर ने अपना अभिग्रह यथार्थ रीति से पूर्ण होता जान मोदक ग्रहण किया । उस समय देवताओं ने पांच दिव्य प्रकट किए और रत्नो की वृष्टि को । इससे सारे नगर में आनन्दोत्सव मनाया गया और बहुत से भव्य जीवों को बोध हुआ । इससे शासन की अतिशय उन्नति हुई ।

वहाँ से विहार कर सूरीश्वर मथुरा नगर में आये । वहाँ का राजा तथा प्रजा सब बौद्धधर्मानुयायी होने से नगर में गये

हुए साधुओं को कहीं भी गोचरी उपलब्ध नहीं हुई और साथ में सब उनकी निभर्त्सना करने लगे। यह देख आचार्य महाराज ने विद्या मन्त्र के प्रभाव से निर्भर्त्सना करने वाले बौद्धों को स्तंभित कर दिए। यह बात वहाँ के राजा हेमध्वज को मालूम हुई तो उसने जैनाचार्य को मारने के लिए सेना भेजी। सेना को आती देख सूरि – भक्त देवताओं ने समस्त सेना को चित्र के समान स्तम्भित कर दी और आकाशवाणी से कहा कि जो तुम सब को जीवित रहने की इच्छा हो तो आचार्य महाराज के पास जाकर अपने किए अपराध की क्षमा मांग जिनोक्त धर्म को अङ्गीकार करो।

यह आकाशवाणी सुन सब विस्मित हुए और गुरु के पास आकर नमस्कार किया और श्रावक धर्म अङ्गीकार किया। पीछे सब ने भक्ति पूर्वक गोचरी के लिए साधुओं को निमन्त्रित किया। फिर। सूरि जी की स्तुति करते हुए कहने लगे कि हे प्रभु! आपने हमको संसार समुद्र में डूबते हुए को बचाकर मिथ्यातत्व छुड़ाकर सम्यग् धर्म प्राप्त कराया है इसलिए हम आपके अत्यंत ऋणी हैं। इस तरह उस नगरी के राजा आदि नगर जनों को शुद्ध धर्म में आरूढ़ कर शासन की उन्नति कर आचार्य वहाँ से नागपुर नगर आये।

गुरु महाराज को आए जान सब नगर निवासी तथा राजा परिवार सहित वन्दना करने गये। राजादि नगरजनों को आए जान सूरीश्वर ने संसार रूप ताप से तप्त हुए प्राणियों के मेघ की वृष्टि समान देशना आरम्भ की। गुरू की देशना

से राजा को प्रतिबोध हुआ और भाव पूर्वक
अङ्गीकार किया । उस समय उस राजा के दुश
राजा की सेना चढ़ आई । इस तरह अचानक अगणि
की सेना को आई जान राजा घबरा कर गुरु
लगा–कृपासिन्धु ! अब इस शत्रु से मेरी प्रजा
किस प्रकार होगी ? यदि मुझे पहले खबर हो जात
लड़ाई की तैयारी करता परन्तु अब क्या हो सकता

गुरु ने कहा–राजन् ! धर्म के प्रभाव से उपद्रव
होगा । तू निश्चित हो तेरे महल में जा और धर्माराध
यह कह राजा को धीरज दे नगर में भेजा । थोड़
राजा के दूत ने आकर कहा कि महाराज म्लेच्छ
अधिपति का अभी मृत्यु हो गई है और सारी शत्रु सेन
उपद्रव हो रहा है और सब अपनी रक्षा करने को भाग

यह खुश खबरी सुन राजा अत्यन्त हर्षित हुआ
महाराज के पास आकर पुनः भावपूर्वक वंदना की ।
जगह २ आनन्दोत्सव कर शासन की खूब प्रभावना क

मेरू प्रभाचार्य वहां से विहार कर पुनः भोगपु
पधारे । गुरु का आगमन सुन नगर निवासी उत्साह
को वन्दन करने गए और देशना श्रवण करने को बै
महाराज ने अनेक भवोपार्जित पापकर्मों का नाश कर
देशना दी । उस समय सो धर्म देवलोकाधिपति वह
सूरि के चरण कमलों में नमस्कार कर स्तुति करने

हे करूणासिन्धु ! हे गुणाकर ! हे परमोपकारी सूरिश्वर ! आपने जिनोक्त शासन की अत्यन्त उन्नति कर उत्कृष्ट पुण्योपार्जन कर त्रिलोक पूज्य श्री जिननाम कर्म निकाचित बंध किया है। इस लिए आगामी काल में अनेक सुरासुर आपके पद कमलों में नमस्कार कर अपने पापों का क्षय करेंगे। मैं भी कृतार्थ हुआ जिससे आपके पवित्र दर्शन कर सका हूँ। इस प्रकार स्तुति कर इन्द्र अपने स्थान पर लौट गया।

सूरि महाराज वहाँ से विहार कर समेत शिखर पर पधारे। वहाँ अनशन कर ब्रह्मदेवलोक में महान् समृद्धि शाली देव हुए। वहाँ से चवकर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद प्राप्त कर आनन्दमय मोक्ष सुख प्राप्त करेंगे।

समाप्तम्

श्री खरतरगच्छीय प्रथम दादा श्रीजिनदत्त सुरीश्वर जी की स्तुति

दातार मेरे प्यारे, दादा गुरु है दातार।

दत्त सुरीश्वर दादा गुरु है, कल्पतरू के अवतार। अवतार मेरे प्यारे ॥दादा॥१॥ निपूतियों को सुपूत देते, निर्धन को भंण्डार। ॥ भण्डार मेरे प्यारे ॥ दादा ॥२॥ रोगी कुरूप के रोग मिटाते, जल्दी से रूप सुधार। सुधार मेरे प्यारे। दादा ॥३॥ निर्बुद्धियों में शुद्धि प्रयोग ते करते सुबद्धि प्रचार। प्रचार मेरे प्यारे ॥दादा

सेवे सुगुरु भवि सुरगग नायक "हरि" करे जयकार। जय

से राजा को संतोष हुआ और [illegible] को अङ्गीकार किया। इस समय इस नगर के ऊपर म्लेच्छ राजा की सेना चढ़ आई। इस नगर पर अचानक म्लेच्छों की सेना को आई जान राजा घबरा कर गुरु से कहने लगा—कृपासिन्धु ! अब इस शत्रु से मेरी प्रजा की रक्षा किस प्रकार होगी ? यदि मुझे पहले खबर हो जाती तो मैं लड़ाई की तैयारी करता परन्तु अब क्या हो सकता है !

गुरु ने कहा—राजन् ! धर्म के प्रभाव से उपद्रव का नाश होगा। तू निश्चिन्त हो तेरे महल में जा और धर्माराधन कर। यह कह राजा को आदर से नगर में भेजा। थोड़ी देर में राजा के दूत ने आकर कहा कि महाराज म्लेच्छ सेना के अधिपति की अभी मृत्यु हो गई है और सारी शत्रु सेना में महा उपद्रव हो रहा है और सब अपनी रक्षा करने को भाग रहे हैं।

यह खुश खबरी सुन राजा अत्यन्त हर्षित हुआ और गुरू महाराज के पास आकर पुनः भावपूर्वक वंदना की। नगर में जगह २ आनन्दोत्सव कर शासन की खूब प्रभावना की।

मेरू प्रभाचार्य वहां से विहार कर पुनः भोगपुर नगर में पधारे। गुरु का आगमन सुन नगर निवासी उत्साह पूर्वक गुरु को वन्दन करने गए और देशना श्रवण करने को बैठे। सूरि महाराज ने अनेक भवोपार्जित पापकर्मों का नाश करने वाली देशना दी। उस समय सो धर्म देवलोकाधिपति वहाँ आकर सूरि के चरण कमलों में नमस्कार कर स्तुति करने लगा—

हे करूणासिन्धु ! हे गुणाकर ! हे परमोपकारी सूरिश्वर ! आपने जिनोक्त शासन को अत्यन्त उन्नति कर उत्कृष्ट पुण्योपार्जन कर त्रिलोक पूज्य श्री जिननाम कर्म निकाचित बंध किया है। इस लिए आगामी काल में अनेक सुरासुर आपके पद कमलों में नमस्कार कर अपने पापों का क्षय करेंगे। मैं भी कृतार्थ हुआ जिससे आपके पवित्र दर्शन कर सका हूँ। इस प्रकार स्तुति कर इन्द्र अपने स्थान पर लौट गया।

सूरि महाराज वहाँ से विहार कर समेत शिखर पर पधारे। वहाँ अनशन कर ब्रह्मदेवलोक में महान् समृद्धिशाली देव हुए। वहाँ से चवकर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद प्राप्त कर आनन्दमय मोक्ष सुख प्राप्त करेंगे।

समाप्तम्

श्री खरतरगच्छीय प्रथम दादा श्रीजिनदत्त सुरीश्वर जी की

स्तुति

दातार मेरे प्यारे, दादा गुरु हैं दातार।

दत्त सुरीश्वर दादा गुरु है, कल्पतरू के अवतार। अवतार मेरे प्यारे ॥दादा॥१॥ निपूतियों को सुपूत देते, निर्धन को भंण्डार। ॥ भण्डार मेरे प्यारे ॥ दादा ॥२॥ रोगी कुरूप के रोग मिटाते, जल्दो से रूप सुधार। सुधार मेरे प्यारे। दादा ॥३॥ निर्बुद्धियों में शुद्धि प्रयोग ते करते सुबद्धि प्रचार। प्रचार मेरे प्यारे ॥दादा ॥४॥ सेवे सुगुरु भवि सुरगग नायक "हरि" करे जयकार। जय मेरे प्यारे ॥ दादा ॥५॥

श्री खरतर गच्छीय प्रसिद्ध योगीराज श्री आनन्दघनजी म.. रचित पद

या पुद्‌गल का क्या विशवासा, है सपने का वासारे ॥

चमत्कार बिजली दे जैसा, पानी बीच पतासा ।

या देही का गर्व न करना, जंगल होगा वासा ॥१॥

झूठा तनधन झूठा जोबन, झूठा है घर वासा ।

"आनन्दघन" कहे सब ही झूठा, साचा शिवपुर वासा ॥२॥

श्री खरतरगच्छीय प्रसिद्ध योगीराज श्री चिदानन्द जी म.. रचित पद

श्री [illegible] प्रसिद्ध योगीराज श्री आनन्दघनजी

रचित पद

या पुद्गल का क्या विसवासा, है सुपने का वासा।
चमत्कार बिजली दे जैसा, पानी बीच पतासा।
या देही का गर्व न करना, जंगल होगा वासा ॥१॥
झूठा तन धन झूठा जोबन, झूठा है घर वासा।
"आनन्दघन" कहे सब ही झूठा, साचा शिवपुर वासा ॥२॥

श्री खरतरगच्छीय प्रसिद्ध योगीराज श्री चिदानन्द जी

रचित पद

ज्ञान कला घट भासी जाकू ॥ज्ञान०॥
तन धन नेह नहीं रह्यो ताकू, छिन में भयो उदासी ॥१॥
हूँ अविनासी भाव जगत के, निश्चय सकल विनाशी।
एहवी धार धारण गुरुगम, अनुभव मारग पासी ॥२॥
मैं मेरा ए मोह जनित जस, ऐसी बुद्धि प्रकासी।
ते निःसंग पग मोह शीशदें, निश्चय शिवपुर जासी ॥३॥
सुमता भई सुखी इम सुनके, कुमता भई उदासी।
"चिदानन्द" आनंद लह्यो इम, तोर करम की पासी ॥४॥